मुद्रक तथा प्रकाशक—
घनश्यामदास जालान
गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० १९८९ प्रथम संस्करण ५२५०
सं० १९९७ द्वितीय संस्करण २०००
मूल्य ||) आठ आना

मिलनेका पता—
गीताप्रेस, गोरखपुर
सूचीपत्र मुफ्त मँगाइये।

विषय-सूची

नाथवाणीका प्रसाद

मुद्रक तथा प्रकाशक—
घनश्यामदास जालान
गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० १९८९ प्रथम संस्करण ५२५०
सं० १९९७ द्वितीय संस्करण २०००
मूल्य ||) आठ आना

मिलनेका पता—
गीताप्रेस, गोरखपुर
सूचीपत्र मुफ्त मँगाइये।

विषय-सूची

नाथवाणीका प्रसाद



॥ श्रीः ॥

भूमिका

यह चरित्र एकनाथ महाराजका है। इनका नाम महाराष्ट्रमें अत्यन्त लोकप्रिय है। श्रीज्ञानेश्वरका नाम गम्भीर बना देता है, तुकारामके नाममें लीनता है, रामदासके नामकी धाक है, वैसे ही इनके नाममें सबको प्रसन्न कर देनेकी शक्ति है। कारण, इनका चरित्र ऐसा ही है जो पाठक आगे पढ़ेंगे। काशीमें जैसे गंगा बहती हैं, वैसे ही महाराष्ट्रमें, विशेषकर पैठणमें एकनाथकी स्मृतिगंगा बहती हैं। आज भी महाराष्ट्रमें सर्वत्र एकनाथ-षष्ठी मनायी जाती है और पैठणमें तो इस दिन सब दिशाओंसे यात्री एकत्र होते और इस स्मृतिगंगामें स्नानकर कृतार्थता अनुभव करते हैं। प्रतिष्ठान या पैठण किसी समय विद्याका एक प्रधान केन्द्रस्थान था, पर आज पैठणमें और तो कुछ नहीं, पर एकनाथकी दिव्य स्मृति है। पैठणकी विद्या सफल हो गयी जब एकनाथ उत्पन्न हुए। पैठणमें एकनाथ महाराजका स्थान अभीतक है, 'योगक्षेम वहाम्यहम्' के न्यायसे उनके वंशधरोंको मिली हुई जागीर भी है, वंशधर भी हैं, एकनाथ महाराजकी स्मृति और उनका कार्य भी है। स्मृतिके उत्सव भी होते हैं।

चरित्र एकनाथ महाराजका है। अवलोकन और लेखन महाराष्ट्रके सुप्रसिद्ध हरिभक्तिपरायण विद्वान् लेखक पं० लक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकरका है, इस हिन्दी अनुवादकी भाषा केवल मेरी है। अनुवादमें प्रसंगके अनुसार मूलके कुछ ऐसे मराठी अवतरण मैंने छोड़ दिये हैं जिनके छोड़ देनेसे

मेरे विचारमें प्रसंग, रस या हेतुकी कोई हानि नहीं होती। उदाहरणार्थ, 'रुक्मिणी-स्वयंवर' का मूलमें जो विस्तारपूर्वक वर्णन है और जिसका हेतु इसका पारमार्थिक पहलू दिखलाना है, उसे मैंने बहुत संक्षेपमें दिया है। 'भावार्थ-रामायण' के प्रसंगमें भी ऐसा ही किया है। 'एकनाथी भागवत' से बोध-वचनोंका जो संग्रह दिया है, वह मानो इसके बदलेमें, मूल ग्रन्थमें दिये हुए वचनोंसे बहुत अधिक है। इन दो-एक बातोंको छोड़कर यह अनुवाद सर्वथा श्रीपांगारकरजीकी पुस्तकका ही अनुवाद है।

इस अनुवादकी प्रेरणा अपने सम्मान्य और परम प्रेमास्पद मित्र श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने की। उनका यदि इस ओर ध्यान न होता तो शायद मैं एकनाथ महाराज-के इस गुणानुवादसे प्राप्त होनेवाले अप्रत्यक्ष सत्संगसुखसे वञ्चित ही रहता। मुझे यह अनुवाद करते हुए जो आनन्द मिला वह अमूल्य है। उसका मूल्य यदि कुछ हो सकता है तो वह यही है कि इससे पाठकोंका सात्त्विक मनोरञ्जन हो और हम सबके लिये एकनाथ महाराजका दृष्टान्त सत्पथका प्रदर्शक हो।

काशी ज्येष्ठ कृ० १२ स० १९८९
बुधवार

लक्ष्मण नारायण गर्दे



श्रीहरिः

ग्रन्थकारकी प्रस्तावना

श्रीएकनाथ महाराजका यह संक्षिप्त चरित्र मराठी-पाठकोंके सामने मैं आज सादर उपस्थित करता हूँ। नाथ महाराजका विस्तृत चरित्र लिखनेका विचार मैंने अभी स्थगित रखा है। सत्कवि श्रीमोरोपन्तके 'चरित्र और काव्य-विवेचन' का ६०० पृष्ठोंका ग्रन्थ मैं दो वर्ष पहले रसिकोंके सामने रख चुका हूँ। ऐसा ही एकनाथ महाराजका बृहत् चरित्र लिखनेका काम मैंने अपने सिर उठा लिया है और उसके काव्य-विवेचन-सम्बन्धी दो-तीन अध्याय मैं लिख भी चुका हूँ। श्रीज्ञानेश्वर, श्रीनामदेव, श्रीएकनाथ, श्रीतुकाराम और श्रीरामदास इस पञ्चायतनके साद्यन्त चरित्र विस्तृत परिमाणपर लिखनेका मेरा संकल्प पहलेसे था और अब भी है; तथापि इस विस्तृत परिमाणपर लिखे जानेवाले चरित्रोंके पहले आबाल-वृद्ध, छोटे-बड़े और अमीर-गरीब सबके संग्रह करने योग्य बोधप्रद, आनन्ददायक तथा सुबोध भाषामें लिखे हुए संक्षिप्त चरित्र लिखनेके लिये अनेक मित्रोंने मुझसे बहुत कहा और इसीको श्रीहरिकी आज्ञा मानकर मैं इस कार्यमें प्रवृत्त हुआ हूँ।

यह एकनाथ महाराजका चरित्र पहले प्रकाशित हो रहा है और इसके बाद ज्ञानेश्वर महाराज, नामदेव महाराज,

तुकाराम महाराज, रामदास स्वामी आदि विख्यात साधु-महात्माओंके चरित्र क्रमसे लिखकर प्रकाशित करनेका विचार है, जिसे सत्यसंकल्पके दाता भगवान् पूर्ण करें। प्रस्तुत चरित्र पाँच सप्ताहमें लिखकर तैयार हुआ, इसीसे यह आशा हुई है। सन्त श्रीहरिके उपासक और जीवोंके परम मित्र होते हैं। उनकी वाक्-सुधा-सरितामें अखण्ड निमज्जन करते और उनके गुण गाते और सुनते हुए आनन्दसे अपने मूल पदको प्राप्त करें, ऐसी प्रीति श्रीहरिने ही उत्पन्न की है और इसका पोषण करनेवाले भी वही हैं। सन्त जीवोंके माता-पिता हैं। ज्ञानेश्वरी, नाथ-भागवत, अमृतानुभव, दासबोध, नामदेव, तुकारामादिके अभङ्ग और सहस्रों भजनादि ग्रन्थोंके रूपमें सन्त ही अवतीर्ण हुए हैं। सन्तके सङ्गसे मनका मैल धुल जाता है, मन स्थिर होकर हरि-चरणोंमें लीन होता है, विषय बाधक क्या होंगे, उनका स्मरण भी नहीं होता, संसार सारभूत और आनन्द-दायक प्रतीत होता है। 'मैं' पन मरता और सर्वात्मभाव जाग उठता है और सब हरिमय मालूम होता है—अखिल विश्व चिदानन्दसे भर जाता है। सन्त भव-बन्धनसे छुड़ाते और स्वस्वरूपके सुखमय सिंहासनपर बैठाते हैं। सन्तोंकी वाणी जब सदा जिह्वापर नाचने लगती है तब भीतर-बाहर सर्वः प्रकाश फैलता है, विचार जागता और अज्ञान अस्त होता है सत्संग मोक्षका द्वार है। सन्तों और सन्तोंके ग्रन्थोंमें को भेद नहीं है। सन्तोंके अपार उपकारोंसे अंशतः उऋण होने उत्तम उपाय यही है कि हम उनके उपदेश और चरित्र

प्रचार करें। सत्संगमें, सन्तोंके ग्रन्थोंमें और सन्तोंके चरित्रोंमें हम रँगें और दूसरोंको रँगावें, भक्तिका आनन्द स्वयं चखें और दूसरोंको चखावें और परस्परके सहायक होकर, वक्ता-श्रोता, लेखक-पाठक सब मिलकर हरि-प्रेमानन्द प्राप्त करें और दूसरोंको प्राप्त करावें। सम्पूर्ण विश्व हरिभक्तोंकी प्रेमभरी कथाओंसे गूँज उठे यही चित्तकी लालसा रहती है।

सन्त कवियोंके चरित्र लिखनेवाले लेखकको तीन बातोंका विशेष ध्यान रखना होगा--(१) सबसे पहले परम्परासे चली आयी हुई विचार-पद्धतिको पूर्णरूपसे अपनाकर धर्म-विचारोंका यथार्थ स्वरूप ध्यानमें ले आना होगा। अधिकांश महाराष्ट्रीय सन्त भागवत-धर्मके माननेवाले 'वारकरी' थे। इस वारकरी-सम्प्रदायमें जबतक कोई मिल नहीं जाता तबतक इस सम्प्रदायका शुद्ध स्वरूप और परम्परागत अर्थसंगति उसके ध्यानमें नहीं आ सकती। आजकल शिक्षितोंमें पूर्वपरम्पराके विषयमें अनादर और परम्परासे बिछुड़ी हुई विचित्र धर्म-कल्पनाएँ खूब फैली हैं। इससे अपना-अपना तर्क चलाकर सन्तोंके ग्रन्थों और उनकी कविताओंका चाहे जैसा अर्थ करनेकी बीमारी-सी फैल गयी है। सन्तोंके ग्रन्थ नवीन विचारसे समझने और समझानेका ये लोग प्रयत्न कर रहे हैं। पर इन स्वतन्त्र विचारवालोंसे उन ग्रन्थोंमें दिखायी देनेवाले विरोध दूर करके अनेक उद्गारोंकी एक वाक्यता करना नहीं बन पड़ता। यह काम साम्प्रदायिकोंसे ही बनता है। मैं यह नहीं कहता कि आँखें मूँदकर पूर्वपरम्पराको मान लो और अपनी बुद्धिसे कुछ

भी विचार मत करो। तथापि पूर्वपरम्पराको अच्छी तरह समझे बिना केवल अपना तर्क चलाना ठीक नहीं। 'वारकरी-सम्प्रदायमें रखा ही क्या है? ये लोग करताल बजाना, हरिनाम लेना और नाचना-गाना जानते हैं। इसके सिवाय तत्त्वकी इन्हें क्या खबर है?' यह कहकर इन भगवद्भक्तोंका अनादर करके अपने ही तर्कपर आरूढ़ होनेवाले अहंमन्य विद्वान् आज-कल अनेक हैं, तथापि अपने अनुभवसे मैं यह निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि ज्ञानेश्वरी, अमृतानुभव, नाथभागवत, दासबोध, तुकारामादिके सहस्रों अभङ्गोंका पूर्वापर सम्बन्ध लगाकर उत्तम समाधान करनेवाले मर्मज्ञ साम्प्रदायिकोंमें ही मिलते हैं। तात्पर्य, सन्तोंके ग्रन्थ सम्प्रदायपरम्परासे अच्छी तरह समझे बिना उन ग्रन्थोंके विचारोंकी ठीक पहचान नहीं हो सकती और विचारोंकी पहचान होनेपर भी उन विचारोंके अनुसार अनुष्ठान (आचरण) किये बिना उनका सच्चा मर्म कदापि ध्यानमें नहीं आ सकता। (२) भावके बलसे सन्तोंके रहस्य समझमें आ सकते हैं और ग्रन्थार्थ मालूम हो सकता है। परन्तु चरित्रकारमें वागर्थसौन्दर्य अर्थात् शब्दसौन्दर्य और अर्थ-सौन्दर्य जानने योग्य रसिकता भी होनी चाहिये। कहाँ कौन-सी कल्पना सुन्दर है, कहाँ कौन-सा पदविन्यास समुचित है, कहाँ कौन-सा रस या अलङ्कार है यह जानकर तत्तत्स्थानमें उसका चित्त तन्मय हो जाना चाहिये। (३) तीसरी बात यह है कि चरित्रकारमें इतिहासदृष्टि भी होनी चाहिये। स्थल-काल-का पूर्वापर सम्बन्ध उसे जानना होगा। तात्पर्य, चरित्रकार

साम्प्रदायिक अर्थात् भावुक, काव्यमर्मज्ञ अर्थात् रसिक और इतिहासज्ञ अर्थात् चिकित्सक होना चाहिये। ऐसा तीनों गुणों-से युक्त चरित्रकार हो तो वह सन्तोंके चरित्र लिखनेका काम उत्तम रीतिसे कर सकता है। भावुकता, रसिकता और चिकित्सकता इन तीन गुणोंकी कल्पना महीपतिबावा, विष्णु-शास्त्री चिपलोणकर और राजवाडे इन तीन नामोंसे अनायास ही हो सकती है। महीपतिबावाके चरित्रलेखनमें काल-विपर्या-सादि दोष दिखायी देते हैं, पर उनकी प्रेमभरी रसीली वाणी संसारदुःख भुलाकर, रज-तमको दबाकर और सत्त्वगुणका उदय करके भक्तिमार्गपर ला खड़ा कर देती है। राजवाडे विद्वान्, शोधक, उद्योगी, स्वार्थत्यागी और बुद्धिमान् होनेसे विद्वन्मान्य रहेंगे और शास्त्रीय शोधके सम्बन्धमें उनके उपकार सदा स्मरण रहेंगे। पर उनकी कर्कश, कठोर और भेदक पद्धति भावुकोंको कभी अच्छी नहीं लग सकती। निबन्ध-मालाकार विष्णुशास्त्री मध्यस्थ रहेंगे; तर्कके लिये न तो वह रसका निषेध करेंगे और न अन्ध-श्रद्धाके लिये चाहे जिस बातपर विश्वास ही करेंगे। महीपतिकी रसिकता, मालाकारकी मार्मिकता और राजवाडेकी चिकित्सकता इन तीनों गुणोंका समुचित सम्मिश्रण जिस सन्त-चरित्रकारमें हुआ रहेगा वह भावुक, रसिक और पण्डित तीनों प्रकारके लोगोंके लिये मान्य होगा। ऐसा पुरुष जब उत्पन्न हो। पर इन तीन गुणोंका अल्पांश भी यदि मेरी सन्त-चरित्रमालामें दिखायी दे तो मैं यह समझ सकता हूँ कि साहित्यकी दृष्टिसे भी सन्तोंकी कुछ सेवा हुई।

एकनाथ महाराजके इस चरित्रके लिये मुख्य आधार केशवबुवा और महीपतिबुवाके लिखे चरित्र और स्वयं एकनाथ महाराजके ग्रन्थ हैं। महीपतिके आधारपर श्रीसहस्रबुद्धेने एकनाथ महाराजका एक गद्यात्मक चरित्र लिखा है। इसके बाद केशवबुवाका लिखा हुआ चरित्र प्रकाशित हुआ है। केशवबुवा नाथ-साम्प्रदायी थे और देवगढ़पर ही शाके १६८२ (संवत् १८१७) में उन्होंने यह नाथ-चरित्र लिखा जो ३१ अध्यायोंमें पूर्ण हुआ है। महीपतिने भक्त-विजय (अ० ४५-४६) और भक्त-लीलामृत (अ० १३—२४) में एकनाथ महाराजका चरित्र वर्णित किया है। भक्त-विजयमें संक्षेप है और भक्त-लीलामृतमें विस्तार है। भक्त-विजय ग्रन्थ शाके १६८४ (संवत् १८१९) में लिखा गया और भक्त-लीलामृत शाके १६९६ (संवत् १८३१) में सम्पूर्ण हुआ। सम्प्रदायशुद्ध और प्रथम चरित्र केशवबुवाका ही लिखा हुआ है। महीपतिबाबाने सन्त-लीलामृतमें केशवबुवाके ग्रन्थमें दिया हुआ कथा-भाग ज्यों-का-त्यों दिया है। केशवकृत नाथ-चरित्र और महीपतिकृत भक्त-लीलामृत दोनों सामने रखकर देखा जाय तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि केशवकृत ग्रन्थ सामने रखकर ही महीपतिने वर्णन किया है। महीपतिने यह चरित्र २३५८ ओवियोंमें लिखा है और केशवकृत ग्रन्थमें २६४४ ओवियाँ हैं। तात्पर्य, केशवकृत नाथ-चरित्र महीपतिके पहलेका है। इन दो चरित्रोंके आधारपर तथा एकनाथ महाराजकी उक्तियोंको स्थान-स्थानमें प्रमाणके तौरपर उद्धृत करके मैंने यह चरित्र-ग्रन्थ तैयार किया है।

दासोपन्त, मुक्तेश्वर, कृष्णदयार्णव, मोरोपन्त आदिसे भी कहीं-कहीं सहारा लिया है और अन्तमें 'स्तुति-सुमनाञ्जलि' में एकनाथ महाराजके पश्चात् जो कवि हुए उनके एकनाथके सम्बन्धमें प्रेमोद्गारोंका संग्रह किया है। इन प्रेमोद्गारोंसे यह अच्छी तरह मालूम हो जाता है कि महीपति और केशवकृत ग्रन्थोंमें दी हुई कथाएँ सर्वत्र कितनी परिचित हो गयी थीं। इस ग्रन्थमें स्थान-स्थानपर एकनाथ महाराजके ग्रन्थोंमेंसे उनके अनेक वचन उद्धृत किये हैं और जहाँ हो सका है वहाँ एकनाथ महाराजका मनोभाव उन्हींके शब्दोंसे प्रकट कराया है। एकनाथ महाराजसे ही उनका अपना चरित्र कहलवाया है और चरित्र और ग्रन्थ दोनोंका मेल दिखलाया है। यही इस ग्रन्थकी विशेषता है। पहिले अध्यायमें नाथके प्रपितामह भानुदासका समग्र चरित्र दिया है और इसमें भी चरित्र और वचनोंका मेल दिखलाया है। दूसरे अध्यायमें नाथके बाल्यकालका वर्णन है जो बालकोंके लिये बहुत बोधप्रद होगा। तीसरे अध्यायमें नाथके गुरु जनार्दन स्वामीका परिचय देकर नाथकी गुरुसेवा और स्वामीके सगुण साक्षात्कारका वर्णन एकनाथके शब्दोंमें ही कराया है। चौथे अध्यायमें एकनाथ महाराजको जो भगवान् दत्तात्रेयके दर्शन हुए उसका वर्णन करके, नाथके दत्तमानस-पूजा-सम्बन्धी अभंग दिये हैं और उसके अनुष्ठानकी पद्धतिका वर्णन किया है। पाँचवेंमें एकनाथकी तीर्थयात्रा और नाथ और चक्रपाणिके परस्पर-वियोग तथा पुनः मिलनके प्रेम-रस-परिप्लुत प्रसंगका वर्णन किया है। छठा अध्याय बड़े महत्त्वका

है। इसमें नाथका गृहस्थाश्रम, उनकी धर्मपत्नीका सदाचरण, एकनाथकी दिनचर्या, उनकी कथा कहने और कीर्तन करनेकी पद्धति, निन्दक और द्वेषियोंके साथ उनका उदार व्यवहार, उनका समत्व और उनकी उपासना आदि बातोंका विवरण दिया है। सातवें अध्यायमें 'पैठणकी षष्ठी' का इतना महत्त्व क्यों है यह बतलाकर एकनाथकी गुरु-भक्तिका मर्म पुनः विस्तारके साथ बतलाया है। नाथ-चरित्रका सबसे बड़ा गुण गुरु-भक्ति है, इसलिये यहाँ इसका विशेष रूपसे विवेचन किया है। सम्पूर्ण ग्रन्थमें प्रसङ्गानुसार एकनाथ महाराजकी जो कथाएँ वर्णित हुई, उनके अतिरिक्त उनकी जो अन्य महत्त्वपूर्ण कथाएँ महाराष्ट्रमें सर्वत्र प्रसिद्ध हैं उनका संग्रह आठवें अध्यायमें किया है। दो-तीन कथाएँ मैंने ऐसी दी हैं जो केशव और महीपतिके ग्रन्थोंमें नहीं हैं पर प्रसिद्ध हैं। एकनाथ महाराजको सर्वसाधारण लोगोंने महात्मा कैसे जाना, यह इस अध्यायसे मालूम होता है। एकनाथ महाराजके यहाँ स्वयं भगवान् आकर बारह वर्षतक रहे और एकनाथकी सेवा करते रहे, यह कथा मैंने तत्कालीन सन्तोंके वचनों तथा एकनाथ महाराजके अपने वचनोंके प्रमाण देकर नवें अध्यायमें सप्रमाण दी है। दसवें अध्यायमें यह बतलाया है कि एकनाथ महाराजने पण्ढरी, आलन्दी और काशीकी यात्राएँ कब किस प्रसंगसे और कैसे कीं और फिर इसी अध्यायमें संक्षेपमें उनके ग्रन्थोंका परिचय दिया है। इस अध्यायमें यह बतलाया है कि किस प्रकार काशीके विद्वानोंने पहले एकनाथ महाराजको बड़ा कष्ट दिया

और पीछे उनके सदाचरणसे मुग्ध होकर उनके भागवत ग्रन्थका जयजयकार किया; इसीमें फिर दासोपन्त और नाथकी भेंट, नाथको ज्ञानेश्वर महाराजके दर्शनोंका लाभ और गावबाका चरित्र वर्णित हुआ है। ग्यारहवें अध्यायमें उनकी सन्ततिका वर्णनकर उनके नाती मुक्तेश्वर और पुत्र हरिपण्डितका परिचय करा दिया है। नाथ और हरिपण्डितमें परस्पर विरोध और फिर मेल कैसे हुआ यह बतलाकर नाथके निर्याणकालका वर्णन किया है और बारहवेंमें नाथकी बड़ाई बड़ोंने कैसे बखानी है यह बतलाया है। ये सब बातें, ये बारह अध्याय पढ़नेसे अच्छी तरहसे मालूम होगी। गृहस्थाश्रममे रहते हुए एकनाथ महाराजने अपनी ब्रह्मस्थितिको अखण्ड रखा। नाथका-सा मनोहर चरित्र नाथका ही है। इसकी कोई दूसरी उपमा नहीं। श्रीक्षेत्र पैठणमें मैं पन्द्रह दिन रहा, इस बीच जो बातें मालूम हुई उनसे भी इस चरित्र-लेखनमें मुझे बड़ा लाभ हुआ। मै इस चरित्र-मालाको उपर्युक्त भावुक, रसिक, और चिकित्सक तीनोंके प्रधान गुणोंका आदर करते हुए तैयार करनेवाला हूँ। कार्यारम्भ हो गया है और हेतु यही है कि हरि, हरिभक्त और हरिनामके विषयमें अपना और अपने पाठकोंका प्रेम और आदर बढ़े और सन्त-चरित्रके दर्पणमें अपना निजरूप हम लोग देख सकें। आत्म-शुद्धिका इसके सिवाय और कोई दूसरा साधन मुझे नहीं दिखायी देता। श्रवण, मनन और निदिध्यास सबका फल सन्तोंके संगसे प्राप्त होता है। सन्तोंका गुणगान जीवको प्रिय है,





ॐ

श्रीएकनाथ-चरित्र

प्रपितामह भानुदास

शुद्ध बीजके ही मधुर और सुन्दर फल होते है ।

—तुकाराम

श्रीएकनाथ महाराजके परदादा भानुदास आश्वलायन-शाखाके ऋग्वेदी महाराष्ट्र-देशस्थ* ब्राह्मण थे । इनका जन्म शाके १३७० (संवत् १५०५) के लगभग पैठण (प्रतिष्ठान) क्षेत्रमें हुआ । शककर्त्ता शालिवाहन उर्फ सातवाहनकी राजधानी इसी नगरमें थी और तबसे यह स्थान संस्कृत-विद्याका केन्द्रस्थान-सा हो रहा था । इसीसे इसे 'दक्षिणकी काशी' भी कहते थे । चारों वेद, छः

* महाराष्ट्र-ब्राह्मणोंकि मुख्यत. तीन भेद माने जाते हैं—कोंकणस्थ या चित्पावन, देशस्थ और कऱ्हाडे । स्थान-भेदसे ही ये भेद हुए हैं, यह इन नामोंसे स्पष्ट है । खान-पान, भाषा-भाव, रीति रस आदिमें परस्पर कोई भेद नहीं है, परन्तु परस्पर विवाह-सम्बन्ध प्रायः नहीं होता, बहुत कम होता है ।



श्रीश्रीएकनाथ महाराज

ॐ

श्रीएकनाथ-चरित्र

प्रपितामह भानुदास

शुद्ध बीजके ही मधुर और सुन्दर फल होते हैं।

—तुकाराम

श्रीएकनाथ महाराजके परदादा भानुदास आश्वलायन-शाखाके ऋग्वेदी महाराष्ट्र-देशस्थ* ब्राह्मण थे। इनका जन्म शाके १३७० (संवत् १५०५) के लगभग पैठण (प्रतिष्ठान) क्षेत्रमें हुआ। शककर्त्ता शालिवाहन उर्फ सातवाहनकी राजधानी इसी नगरमें थी और तबसे यह स्थान संस्कृत-विद्याका केन्द्रस्थान-सा हो रहा था। इसीसे इसे 'दक्षिणकी काशी' भी कहते थे। चारों वेद, छः

* महाराष्ट्र-ब्राह्मणोंकि मुख्यतः तीन भेद माने जाते हैं—कोंकणस्थ या चित्पावन, देशस्थ और कर्हाडे। स्थान-भेदसे ही ये भेद हुए हैं, यह इन नामोंसे स्पष्ट है। खान-पान, भाषा-भाव, रीति रस्म आदिमें परस्पर कोई भेद नहीं है, परन्तु परस्पर विवाह-सम्बन्ध प्रायः नहीं होता, बहुत कम होता है।

शास्त्र और अठारह पुराणोंका जैसा अध्ययन प्रतिष्ठानमें होता था, वैसा दक्षिणमें अन्यत्र कहीं भी नहीं होता था। ज्ञानेश्वर प्रभृति भाई-बहनको * शुद्धि-पत्र लानेके लिये तेरहवें शतकमें आलन्दीके ब्राह्मणोंने पैठण ही भेजा था। ऐसी इस पुनीत विद्या-नगरीमे एक पवित्र कुलमें भानुदासका जन्म हुआ था। भानुदास† दामाजी पन्तके समकालीन थे और शाके१३९०–९७ (सवत् १५२५–३२) का दुर्भिक्ष उन्होंने देखा था। भानुदासके समय पण्ढरपुरके भागवत-धर्मका‡ परिचय पैठणमें बहुत ही थोड़े कुलोंको था।

* निवृत्तिनाथ, ज्ञानेश्वर या ज्ञानदेव, सोपानदेव और मुक्ताबाई चार भाई-बहन थे। इनके पिता विठ्ठलपन्त नामक ब्राह्मण इनके जन्मके पूर्व ही काशी जाकर सन्यासी हो गये थे। पीछे काशीके रामानन्दस्वामीके उपदेशसे घर लौट आये, गृहस्थ होकर रहे और इनके ये सन्तान हुए। पिताके एक बार सन्यासी होकर फिर गृहस्थ हो जानेके कारण ये सन्तान जाति-बहिष्कृत माने गये। पर ये चारों भाई-बहन अपूर्व बुद्धिमान्, भक्तिमान् और शास्त्र-मर्यादा मानकर चलनेवाले थे। ज्ञानदेवकी प्रगाढ़ विद्वत्ता और अलौकिक सामर्थ्य देखकर पैठणके विद्वत्समाजने नम्रतापूर्वक इन्हें शुद्धि-पत्र दिया। वह ऐतिहासिक शुद्धि-पत्र अत्यन्त महत्त्वका है। ज्ञानेश्वर महाराजके चरित्रमें पाठक उसे देखेंगे।

† दामाजी पन्त बड़े भगवद्भक्त थे। मुसलमान-बादशाहके यहाँ नौकर थे। दुर्गादेवीके भीषण अकालमें इन्होंने दुर्भिक्षपीड़ितोंके लिये शाही अन्नागार खोलकर अन्न लुटवा दिया। इस अपराधके लिये जब इन्हें सजा दी जाने लगी तब कहते हैं कि पण्ढरपुरके विठ्ठल भगवान्ने विठू महारका रूप धारण कर अन्नका मूल्य सरकारी खजानेमें जमा कर दिया।

‡ महाराष्ट्रमें कबसे भागवत-धर्म प्रचलित है इसका कोई निश्चय नहीं किया जा सकता। आजकल जो भागवत-धर्म-सम्प्रदाय वहाँ प्रतिष्ठित है

ऐसे ही एक महान् भागवत-धर्मी कुलमें भानुदास उत्पन्न हुए। इनके पूर्वजोंका विशेष हाल नहीं मालूम होता, तथापि वचपनमे ही भानुदासमें जो गुण प्रकट हुए, उनसे उनके उच्च कुल-चरित्रका पता लगता है। जिस कुलको शुद्धाचरणका कुलजात सहज अभ्यास होता है उसमें उत्पन्न होनेवाले पुरुष प्राय. सदाचार-सम्पन्न ही होते हैं। भानुदास, भानुदासके परपोते एकनाथ और एकनाथके नाती मुक्तेश्वर—इस क्रमसे जिस कुलमें सौ-डेढ-सौ वर्षके अन्दर तीन कुलदीपक प्रज्वलित हुए, उस कुलकी शुद्ध परम्पराके विषयमें और दूसरे प्रमाणकी आवश्यकता ही क्या है ? एकनाथ-जैसे सत्पुरुषका जन्म किसी ऐसे-वैसे कुलमें नहीं हुआ करता। ईश्वरनिष्ठा, सदाचारसम्पन्नता, सत्यप्रीति, एक-निष्ठता इत्यादि सद्गुण जिस कुलमें परम्परासे चले आते हैं उसीमें

उसके मूल प्रवर्तक पुण्डलीक नामक महात्मा हुए। इन्होंने पण्ढरपुर-क्षेत्रमें महान् तप किया। उसी तपसे प्रसन्न होकर भगवान्ने जिस सगुण रूपमें उन्हें दर्शन दिये उसी रूपमें आज वहाँ श्रीविट्ठल भगवान्की मूर्ति स्थापित है। पुण्डलीकके सामने जब भगवान् प्रकट हुए तब पुण्डलीक-ने आसनके लिये पास पड़ी हुई एक ईंट दी। उसी ईंटपर वह खड़े हुए। आज भी पण्ढरपुरके मन्दिरमें भगवान् कटिपर हाथ रखे एक ईंटपर खड़े हैं। पण्ढरपुर ही महाराष्ट्रके भागवत-धर्म-सम्प्रदायका प्रधान केन्द्र है। ज्ञानेश्वर, एकनाथ, तुकाराम आदि महात्माओंने इस भक्तिप्रधान धर्मका आगे बहुत प्रचार किया। इस सम्प्रदायको वारकरी-सम्प्रदाय भी कहते हैं। इस सम्प्रदायके प्रधान उपास्य पण्ढरपुरके श्रीविट्ठल (विष्णु अर्थात् श्रीकृष्ण) भगवान्, मुख्य ग्रन्थ गीता और भागवत (ज्ञानेश्वरी और एकनाथी भागवतके साथ), ध्येय अभेद-भक्ति, साधन नवविधा-भक्ति, महाव्रत एकादशी और प्रधान तीर्थस्थान पण्ढरपुर है।

एकनाथ-जैसे अद्वितीय महात्मा उत्पन्न होते हैं। अनेक पीढियो-का तप ऐसे महापुरुषावतारके रूपमें फलान्वित होता है। अस्तु। जिस महात्माकी भक्तिसे पहली बार भगवान्को यह कुल प्रिय हुआ, उन भानुदासका चरित्र ही इस अध्यायमें अवलोकन करें।

भानुदासका यज्ञोपवीत संस्कार जब हो चुका तब उनके पिताने उन्हें लौकिक-विद्या सिखाना आरम्भ किया, इस अभिप्राय-से कि लड़का कुछ सीखकर साक्षर हो जायगा, परन्तु पूर्व-कर्मसे जिसकी बुद्धिपर हरिभक्तिके ही दृढ संस्कार जमे हुए थे उसे लौकिक-विद्या कैसे भाती ? पिताने बहुत समझाया-बुझाया, डराया-धमकाया, पर उससे कोई लाभ नहीं हुआ। एक दिन पिताके बहुत डाँटने-डपटनेपर दस वर्षके बालक भानुदास रूठकर, गाँवके बाहर एक जीर्ण मन्दिर था उसके तहखानेमें जाकर छिप-कर बैठ गये! तहखानेमें अँधेरा था, कहीं प्रकाश नहीं, वहाँ कोई मनुष्य आता-जाता भी नहीं दिखायी देता था, एकदम सन्नाटा था। ऐसे स्थानमें भगवान् सूर्यनारायणकी एक मूर्ति थी। भानुदास वहाँ सात दिन छिपे रहे। पिताको लड़केका कोई पता नहीं चला, वह विवश होकर शोक करने लगे। भानुदासने सूर्यनारायणके चरण पकड़े, प्रेमाश्रुओंसे उन्हें नहलाया और गद्-गद होकर उनसे करुणा-प्रार्थना की। दो दिन अन्न-जलके बिना बीतनेपर तीसरे दिन सूर्योदयके समय एक दिव्य ब्राह्मण दूधका एक पात्र लिये उनके सामने प्रकट हुआ। उसने कहा—'मैं विश्वचक्षु सूर्यनारायण हूँ, तुम्हारे पिताने बहुत कालतक मेरी

आराधना की, इससे मेरे प्रसादसे तुम्हारा जन्म हुआ है। इसी जन्ममें तुम्हें परमात्मलाभ होगा और तुम कृतार्थ होगे।' यह कहकर ब्राह्मणने भानुदासको भरपेट दूध पिलाया और उसके सिरपर वरद हस्त रक्खा। इस प्रकार सात दिनतक रोज भानुदासको दूध मिलता रहा। दसवें दिन भानुदास मन्दिरके बाहर निकले। पिताने अपने पुत्रको पाया। सबको बडा हर्ष हुआ। सूर्य भगवान्‌के प्रसादकी कथा शीघ्र ही फैल गयी और भानुदासका पहले जो नाम था वह बदलकर भानुदास (याने सूर्योपासक) हो गया। कहते हैं कि इसके बाद भानुदासने तीन गायत्री-पुरश्चरण किये। एकनाथने भी अपने भागवत ग्रन्थमें भानुदासको वन्दन करनेके प्रसगसे इस कथाका वर्णन किया है।

यथासमय भानुदासका विवाह हुआ। कुछ वर्ष बाद भानुदासके माता-पिता परलोक सिधारे और गृहस्थीका सब भार भानुदासके सिर पडा। परन्तु गृहस्थीमें उनका ध्यान नहीं था। पाण्डुरङ्गकी भक्तिके सिवा और कोई धन्धा उन्हें प्रिय नहीं था। वह न कोई व्यापार करते, न किसीकी नौकरी ही। इस नि स्पृह वृत्तिके कारण घरमें अन्न-वस्त्रका जुटना भी कठिन हो गया। बाल-बच्चोंको दरिद्रताके कष्टोंमें ही रहना पडा। घरमें बाल-गोपालोंके रहते भी गृहिणीका मन सदा उदास रहता था। भानुदासका हाल ऐसा बेहाल देखकर उसके सगे-सम्बन्धियोंने उन्हे कुछ पूँजी जुटा दी और कहा कि, 'इससे आप कपडेकी दूकान कर लीजिये, जो लाभ हो उससे परिवारका पालन-पोषण कीजिये और

बडे आनन्द और उत्साहके साथ वह हरि-कीर्तन सुनने चले गये। उधर वह भजनानन्दमें मगन हो गये और इधर उनके कुछ ईर्ष्यालु साथियोंने उनका घोड़ा खोल दिया, उनके कपडेकी गाँठ एक खाईमे डाल दी और ऐसे आकर सो गये जैसे कुछ जानते ही न हों कि क्या हुआ और क्या नहीं हुआ। भगवान्‌को इन दुष्टोंकी यह दुष्टता सह्य नहीं हुई। उसने इन सन्त-द्वेषी व्यापारियों-की आँखें खोलनेके लिये एक माया रची। रात दो बजेके लगभग चोरोंका एक दल धर्मशालामें घुसा। इसने इन व्यापारियोको खूब पीटा और फिर उनके घोडे और सब माल लूट ले गये। भानुदास-जैसे साधु पुरुषके साथ हमलोगोंने ऐसी दुष्टता की, इस बातका कुछ व्यापारियोको वडा दु ख हुआ और वे भानुदासके आनेकी बाट जोहते हुए बैठे रहे। हरि-कीर्तन जब समाप्त हुआ और भानुदास वहाँसे लौटे तब रास्तेमें एक ब्राह्मण उनके घोड़ेकी लगाम पकड़े मिला। भानुदासने उससे अपना घोड़ा लिया और धर्मशालामें पहुँचे। रातकी घटनाका सब हाल उन्हें मालूम हुआ। कुछने भानुदासकी कपडेकी गाँठ ला दी और अपराधकी क्षमा माँगी। भानुदासका घोडा उन्हे वापस मिला, सब माल भी सुरक्षित मिला, चोरोंकी मारसे भी बचे और रातभर हरि-कीर्तनका आनन्द लेते रहे, और उनसे ईर्ष्या करनेवालोंके घोड़े और सब माल चोरोंके हाथ लगा, ऊपरसे व्याजमें मार भी पड़ी! इन बातोंका विचार करते हुए भानुदास बैठे थे। उन्हें यह ध्यान हुआ कि स्वय भगवान्‌ने मेरी रक्षा की और मेरे घोडेकी लगाम जिन्होंने मेरे हाथ दी, वह ब्राह्मण-वेशधारी पुरुष स्वय विट्ठल भगवान् ही थे।

यह सोचकर भानुदासका हृदय प्रेमसे गद्गद हो गया, दामाजीके लिये विठू* महार † का भेस धारण करनेवाले भगवान्‌ने भानुदासके लिये एक पहर अश्वपालका काम किया! यह उस भक्तवत्सल भगवान्‌की महिमाके लिये तो उपयुक्त ही हुआ; परन्तु जिस कारणसे दूसरोंको ईर्ष्या हुई और भगवान्‌को कष्ट हुआ उस व्यापारको ही भानुदासने छोड़ देनेका निश्चय किया। उन्होंने अपना सब कपड़ा अन्य व्यापारियोंको बाँट दिया और आप निश्चिन्त हो गये।

भानुदास अब व्यापारसे सदाके लिये अलग ही हो गये। मानाभिमान छोडकर दिन-रात ईश्वरका भजन करने लगे। महिपत-बाबाने अपनी प्रेमभरी वाणीसे भानुदासके इस समयके जीवनक्रम-का इस प्रकार वर्णन किया है—

'उनको किसी सासारिक सुखके लिये किसीका मुँह नहीं देखना पड़ता था। प्रपञ्च-चिन्ता उनकी बिलकुल छूट गयी, स्त्री-पुत्रादिके साथ रहते हुए भी उनकी उदासीन वृत्ति थी। वह आषाढ़ी और कार्तिकी एकादशी ‡ के अवसरपर पण्ढरपुरकी यात्रा करते थे

---

* विठू, विट्ठल, विठोबा, 'विष्णु' शब्दके अपभ्रंश हैं। पण्ढरपुरके विट्ठल या विठोबा साक्षात् श्रीकृष्ण हैं। उनके साथ रुक्मिणी माता भी हैं जो रखुमाई आई (माई) कहलाती हैं।

† महार अन्त्यजोंकी एक जाति है। झाड़ू देना, चौकीदारी करना, मरे हुए जानवरोंको उठा ले जाना ये सब काम इस जातिके लोग करते हैं।

‡ वारकरी सम्प्रदायमें एकादशीका बड़ा माहात्म्य है। और आषाढ़ी तथा कार्तिकी एकादशीके लिये तो यह नियम है कि इस दिन पण्ढरपुर

धन्य हुआ, कृतकृत्य हुआ। अब जितने जन्म हों सब तेरी सेवाके लिये हों।'

भानुदास परम प्रेमी भक्त थे। सत्यनिष्ठा, आत्मस्तुति और परनिन्दाका त्याग, परद्रव्य और परदाराका छूत, सर्वत्र समभाव, नाम-सकीर्तनकी प्रीति और परमात्मप्राप्तिका आनन्द इत्यादि उनकी दैवी सम्पत्ति थी और उनकी यह सम्पत्ति उनके अभङ्गोंमें भरी हुई है। एकादशीका व्रत और पण्ढरीकी यात्राका नियम उनका अखण्ड था। प्रति आषाढ़ी और कार्तिकी एकादशीको पण्ढरपुरकी यात्रा वह अवश्य करते थे। ऑखें भरकर ईंटपर खड़े पण्ढरीनाथके लावण्यरूपका दर्शन करनेमें उन्हे बडा आनन्द आता था और इस आनन्दका उन्होने जहाँ-तहाँ वर्णन किया है। इसीका उन्होंने सबको उपदेश भी किया है। 'उस सगुण रूपपर काय, वाक् और मन लुब्ध हो जाते हैं।' यह उनका अनुभव था। उन्होंने ईश्वरसे यही प्रार्थना भी की है कि जन्म-जन्मान्तरमें मेरी यही इच्छा पूरी करो कि मैं सदा भगवन्नाम लेता रहूँ और मुझे सदा सन्तोंका समागम प्राप्त हो। पण्ढरीनाथने भानुदासको अपने स्वरूपमें स्थान दिया। भानुदास धन्य हुए। उन महाभागवतको मेरे सहस्रों प्रणाम पहुँचें।

भानुदास महाभागवत तो थे ही, पर उन्होंने महाराष्ट्र-मण्डलकी एक और बहुत बडी सेवा की है। श्रीविठ्ठलकी मूर्ति भानुदास अनागोंदीसे वापिस ले आये इससे उनका यश सर्वत्र फैल गया। वह प्रसंग इस प्रकार है—भानुदासके समय तुंग-

भद्रा-नदीके तटपर विजयानगर उर्फ़ अनागोंदी-राज्यमे कृष्णराय नामक वलशाली राजा राज करते थे। विजयानगरमें इन-जैसा पराक्रमी, दृढ, तेजस्वी विद्वान् और धर्मनिष्ठ राजा दूसरा नहीं हुआ। इन्होने वाईस वर्प (शाके १४३०–१४५२) राज्य किया। पूर्व, पश्चिम और दक्षिण इन तीन दिशाओंमें इन्होंने अपने राज्यको समुद्रतटतक विस्तृत किया था। इनका ऐसा प्रताप था कि इनका कोई शत्रु ही नहीं रह गया। वीजापुरके इस्माइल आदिलशाहको परास्त करके इन्होंने रामेश्वरसे लेकर वेलगॉवतक अपना सिक्का चलाया। अनेकों राजाओंको पादाक्रान्त कर डाला, अनेक दुर्ग वनवाये, जमीनकी पैमाइश कराकर राज-कर वसूल करनेकी पद्धति निश्चित की, नहर खुदवाये, व्यापार, कृपि, कला-कौशल और नाना प्रकारकी विद्याओंको प्रोत्साहित किया और हिन्दू-धर्मका सव ओर यश फैलाया। तुगभद्राका विश्वविख्यात नहर इन्होंने ही खुदवाया। हुवली, वगटूर, वेल्लारी आदि व्यापारिक केन्द्र इन्होंने ही कायम किये। इनके आश्रयमें आठ विद्वद्रत्न थे जो 'दिग्गज' कहाते थे। इन्हींमें सुप्रसिद्ध पण्डित अप्पय्य दीक्षित थे। तेन्नलु रामकृष्ण नामक वडे मसखरे और चतुर कवि इनके मित्र थे। इस कविके चातुर्यकी अनेक कथाएँ तेलगू-भापामें प्रचलित हैं। इन राजा कृष्णरायका प्रजापर अत्यन्त प्रेम था, प्रजा भी इन्हें वैसा ही मानती और चाहती थी। इन्होंने अनेक मन्दिर वनवाये और उनके खर्चके लिये जागीरें नियत कर दीं। इन कृष्णरायके साथ भानुदासका भी कुछ सम्वन्ध है।

राजा कृष्णराय एक बार देव-दर्शनार्थ पण्ढरपुर गये थे। वहाँ वारकरियोंका प्रेमपूर्ण कीर्तनानन्द देखकर यह बहुत प्रसन्न हुए। श्रीविठ्ठलमूर्तिसे उन्हें इतना प्रेम हो गया कि उस मूर्तिको अपनी राजधानीमें ले जाकर प्रतिष्ठित करनेकी उनकी इच्छा हुई। उनके लिये ऐसा करना कुछ कठिन नहीं था। स्थान-स्थानमें उन्होंने ऐसा प्रबन्ध किया कि पण्ढरपुरसे अनागोदीतक उस मूर्तिको बडी शुचिताके साथ ले गये। वहाँ वह मूर्ति यथाविधि प्रतिष्ठित की गयी, बडे ठाटके साथ उसकी सार्वजनिक पूजा हुई, नाना प्रकारके भोग चढाये गये, अनेक स्वर्णरत्नालंकार पहनाये गये और नवरत्नोंका हार अर्पण किया गया। मूर्तिपर अवश्य ही उन्होंने बड़ा कडा पहरा रखा और पूजा-अर्चा बडी भक्तिके साथ होने लगी। इधर आषाढी एकादशीके दिन चारों ओरसे वारकरी पण्ढरी पहुँचे। उन्होंने देखा, देवालयमें देवता नहीं हैं! देखकर सब बहुत उदास हुए। कुछ भक्तोंने तो ऐसा निश्चय किया कि जबतक देव-दर्शन नहीं होंगे तबतक यहाँसे टलेंगे ही नहीं। इस निश्चयके साथ वे गरुडपार*के मैदानमें ही पडे रहे। राजाके बिना जैसी प्रजा या सिन्दूर बिना जैसे किसी सुवासिनीका मुख, वैसे ही श्रीविठ्ठल-के बिना वह भक्तसमुदाय उदास हो गया। आजतक जिन चरणोपर हमलोगोंने सुमनोंकी तरह अपने सिर अर्पण किये, ईंटपर

* पण्ढरपुरमें श्रीविठ्ठल भगवान्‌के मन्दिरमें चाँदीका एक खम्भा है जिसे गरुडस्तम्भ कहते हैं। इसके अतिरिक्त मन्दिरके बाहर एक विस्तीर्ण आँगन है जिसमें गरुडजीकी एक प्रस्तर-मूर्ति है। यही आँगन गरुडपार कहलाता है।

खड़ी मूर्तिका जो सुन्दर स्वरूप 'सब सुखोंका आगर' कहकर आँखें भरकर देखा, जिसके दर्शनमात्रसे लाखों जीवोंको ब्रह्मत्व प्राप्त हुआ, नामदेवादि भक्तोंने जिसे बुलवा दिया, वह कटिपर कर धरे प्रेमी भक्तोंको भक्ति-सुखामृत पान करानेवाला श्रीविट्ठलका सगुण रूप ही इन आँखोंसे देखें और स्वसुखामृतका अखण्ड आस्वाद लें। यह जिन पण्ढरीमें आये परम आर्त और निस्सीम भक्तोंकी इच्छा थी उनमें सबके आगे थे भानुदास। उन्होंने भक्तोंसे कहा, 'मैं अनागोंदी जाकर श्रीविट्ठलको ले आता हूँ। आप लोग तबतक यहीं निश्चिन्त होकर अखण्ड नामघोष करते रहें।' यह कहकर भानुदास अनागोंदी चले। वहाँ पहुँचकर उन्होंने तुङ्गभद्रा-नदीमें स्नान किया और नित्यकर्म करके प्रभुकी खोजमें निकले। भानुदास अपने सदाचरण, भक्ति और ब्रह्मानुभवसे पाण्डुरङ्गके प्यारे हो ही चुके थे। मध्य रात्रिके लगभग वह राजप्रासादके समीप पहुँचे। दरवाजोंमें लगे ताले आप ही खुल पड़े और एक क्षणके अन्दर ही भानुदास आराध्यदेव श्रीविट्ठलमूर्तिके सामने खड़े हो गये। भानुदासको उस समय अपनी देहका भान नहीं था। उन्होंने भगवान्के चरणोंको दृढ आलिङ्गन किया। प्रेमाश्रुओंसे चरणोंको नहलाकर भानुदासने भगवान्से प्रार्थना की---'भगवन्! आपके बिना सब भागवत भक्त दीन हो गये हैं और उनके मुँहसे शब्द नहीं निकलता है। रखुमाई माई (रुक्मिणी माता) भी उदास हो गयी हैं और आश्चर्य करती हैं कि भगवान्ने ऐसा मौन क्यों धारण किया? भगवन्! अब आप हमारे संग चले चलिये।'

पत्थरको भी पिघला देनेवाली दीनतासे भानुदासने भगवान्‌के चरण पकडे । भगवान्‌ने भी तुरन्त अपना प्रसाद दिया । भगवान्‌के गलेमें जो नवरत्न-हार था वह पुष्पमालाके साथ टूटकर भानुदासके हाथोंपर गिरा । इसे महाप्रसाद जानकर भानुदास राज-प्रासादके बाहर निकले । तब सब दरवाजे पहलेकी तरह बन्द हो गये । भोरमें जब पुजारी भगवान्‌की आरती करने आये तब उन्होंने देखा कि ठाकुरजीके गलेमें नवरत्न-हार नहीं है । तुरन्त उन्होंने राजाको खबर दी । सब लोग आश्चर्य करने लगे कि इतना कड़ा पहरा और पक्का बन्दोबस्त होते हुए यह कैसा चोर था जो राजप्रासादमें घुसा और नवरत्न-हार उड़ा ले गया । नगरमें चारों ओर राजकर्मचारी तहकीकात करने लगे, तब तुगभद्राके तटपर नि.शङ्क मनसे गाते-नाचते श्रीविठ्ठलरूपके साथ समरस हुए भानुदास दिखायी दिये, और उनके पास श्रीविट्ठलके गलेका नवरत्न-हार भी पुष्पहारके साथ दिखायी दिया । राजा कृष्णराय अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उन्होंने चोरको सूलीपर चढानेकी आज्ञा दी । सूलीके पास पहुँचाये जाते ही भानुदासने कहा——

'आकाश गरजता हुआ देखे, अखिल ब्रह्माण्ड भग हो जाय और बडवानल त्रिमुवनको ग्रास कर ले तो इससे क्या, मैं तो हे विट्ठल ! तुम्हारी ही बाट जोह रहा हूँ । सातों समुद्र मिलकर एक हो जायँ, यह पृथ्वी चाहे उसमें डूब जाय, अथवा पञ्चमहा-भूत प्रलयको प्राप्त हों, तो भी हे विट्ठल ! तुम्हीं तो मेरे सगी हो । चाहे जैसा जड-भार मुझपर आ पड़े पर मैं तुम्हारा नाम न

छोड़ूँगा, जैसे पतिव्रता अपने प्राणेश्वरका नाम नहीं छोडती। यही मेरा निश्चय है।'

इतना अटल और ऐसा प्रचण्ड निश्चय, ऐसा अलौकिक एकविध भाव जिस भक्तका हो, क्या प्रह्लादप्रिय पाण्डुरङ्ग उसकी कभी उपेक्षा कर सकते हैं? ऐसा कौन-सा सङ्कट है जिसमेंसे भगवान् भक्तको न उबारें? भगवान्‌ने क्या कभी अपने किसी भक्तकी उपेक्षा की है? भक्त भानुदासको जो ताप हुआ उससे 'मातासे भी अधिक कोमल-हृदय, चन्द्रमासे भी अधिक शीतल और जलसे भी अधिक द्रवीभूत, प्रेमके अगाध समुद्र भक्तवत्सल पाण्डुरङ्गका हृदय उसी क्षण उमड़ पडा और क्षणमात्रमें उस सूलीमें पत्ते निकल आये, क्षणार्धमें फूल-फलसे लदकर वह एक सुहावना वृक्ष बन गया! भगवान्‌की लीला अपरम्पार है। यह चमत्कार देखकर राजकर्मचारी राजाके पास गये और उन्हें सब हाल कह सुनाया। यह सुनकर राजाका हृदय एक बार काँप गया और उन्होंने समझा कि जिसे चोर समझकर सूली चढानेकी आज्ञा दी गयी वह चोर नहीं, कोई महान् भगवद्भक्त है। भानुदासको पालकीमें बिठाकर वह राजप्रासादमें ले गये। श्रीविट्ठलके दर्शन होते ही भानुदास गद्गद हो गये, उन्हें रोमाञ्च हो आया और उनके नेत्रोंसे आनन्द-वारिकी वर्षा होने लगी। भानुदासकी अपूर्व भक्ति देखकर राजाको परम सन्तोष हुआ और उन्होंने भानुदासको श्रीविट्ठलकी मूर्ति पण्ढरपुर ले जानेकी अनुमति दी। घट-घटमें विराजनेवाले अनन्त ब्रह्माण्डव्यापी भगवान् भक्तके

सेवा की और स्वय चिद्भानु होकर, मानाभिमानको जीतकर जो 'भगवत्पावन' हुए, जिनकी 'पदवन्ध-प्राप्ति'से श्रीविट्ठल-मूर्तिके दर्शन हुए। उन भानुदासके पुत्र चक्रपाणि हुए, चक्रपाणिके सुलक्षण सुतका नाम सूर्य रखकर भानुदास निजमें निज होकर रहे। उन सूर्यके प्रभा-प्रताप-किरणसे माता रुक्मिणी प्रसूत हुई जो मेरी माता हैं। ग्रन्थारम्भमें पूर्वजमालाको यह वन्दन किया है। यह मेरी भाग्यलीला धन्य है जो ऐसे वैष्णवकुलमें मेरा जन्म हुआ।'

इन उद्गारोंसे यह मालूम हो जाता है कि एकनाथ भानुदासको कितना मानते थे। भानुदासके कारण हमारा वंश भगवान्को प्रिय हुआ और ऐसे वैष्णव पवित्र कुलमें मेरा जन्म हुआ यह मेरा अहोभाग्य है, इत्यादि प्रेमभरे उद्गार हृदयको हिलानेवाले हैं। बडे सात्त्विक अभिमानके साथ एकनाथ कहते हैं कि भानुदासके पावन कुलमें मेरा जन्म हुआ इसीसे भगवत्-भक्तिमें मेरी प्रीति हुई! इस वैष्णव-कुलमें जन्म होनेपर अपनी 'भाग्यलीला' को एकनाथने 'धन्य' कहा है। इस धन्योद्गारका मर्म अनुभवसे ही जाना जा सकता है। भानुदासकी सत्यनिष्ठा, उनकी एकविध भक्ति और उनका शुद्धाचरण इत्यादि गुणोंका विचार करनेसे यही प्रतीत होता है कि *'शुचीना श्रीमता गेहे'* एकनाथ एक योगभ्रष्ट महात्मा ही उत्पन्न हुए। इससे शुद्ध कुल-परम्पराकी रक्षाका कितना महत्त्व है यह भी प्रकट होता है।

एकनाथके पिता सूर्यनारायणका नामकरण भानुदासने ही किया था और इसके बाद ही उनका देहावसान हुआ यह श्रीएकनाथके ही उपर्युक्त लेखसे स्पष्ट है। यह घटना शाके १४३५ (संवत् १५७०) के लगभग हुई होगी।

बाल्यकाल

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।

—गीता ६ । ४३

देह तो छोटी-सी ही होती है, पर उसके आत्मज्ञानकी पौ फटती है और ऐसा प्रकाश फैलता है जैसा सूर्यके आगे उसका अपना प्रकाश फैलता है। उसे अवस्थाकी प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती, वयस्‌की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती, बचपनमें ही सर्वज्ञता उसके गलेमें जयमाल पहनाती है।

—ज्ञानेश्वरी ६ । ४५२-५३

भानुदासने अपने पुत्रका नाम 'चक्रपाणि' और पोतेका नाम 'सूर्यनारायण' रखा। सूर्यनारायण शिशु ही थे जब भानुदास परलोक सिधारे। इसके बीस वर्ष बाद—शाके १४५५ के लगभग—सूर्यनारायणके, रुक्मिणीके गर्भसे 'एकनाथ' उत्पन्न हुए। एकनाथके जन्मकालमे मूल नक्षत्र पडा था। इससे जन्मते ही पिताका और कुछ ही काल बाद माताका देहान्त हो गया। दादा और दादी, इन्हें बचपनमें प्रेमसे एका (एक्या) कहकर पुकारते थे। जन्मते ही मा-बापको ग्रास करके बचे हुए एकनाथके नामका, अध्यात्मदृष्टिसे, जो विलक्षण और गम्भीर अर्थ होता है उसे स्वयं एकनाथने ही अपने कुछ अभंगोंमें इस प्रकार व्यक्त किया है—'मूलके मूलमें ही एका पैदा हुआ इससे

सेवा की और स्वय चिद्भानु होकर, मानाभिमानको जीतकर जो 'भगवत्पावन' हुए, जिनकी 'पदबन्ध-प्राप्ति'से श्रीविट्ठल-मूर्तिके दर्शन हुए। उन भानुदासके पुत्र चक्रपाणि हुए, चक्रपाणिके सुलक्षण सुतका नाम सूर्य रखकर भानुदास निजमें निज होकर रहे। उन सूर्यके प्रभा-प्रताप-किरणसे माता रुक्मिणी प्रसूत हुई जो मेरी माता हैं। ग्रन्थारम्भमें पूर्वजमालाको यह वन्दन किया है। यह मेरी भाग्यलीला धन्य है जो ऐसे वैष्णवकुलमें मेरा जन्म हुआ।'

इन उद्गारोंसे यह मालूम हो जाता है कि एकनाथ भानुदासको कितना मानते थे। भानुदासके कारण हमारा वंश भगवान्को प्रिय हुआ और ऐसे वैष्णव पवित्र कुलमें मेरा जन्म हुआ यह मेरा अहोभाग्य है, इत्यादि प्रेमभरे उद्गार हृदयको हिलानेवाले हैं। बड़े सात्त्विक अभिमानके साथ एकनाथ कहते हैं कि भानुदासके पावन कुलमें मेरा जन्म हुआ इसीसे भगवत्-भक्तिमें मेरी प्रीति हुई! इस वैष्णव-कुलमें जन्म होनेपर अपनी 'भाग्यलीला' को एकनाथने 'धन्य' कहा है। इस धन्योद्गारका मर्म अनुभवसे ही जाना जा सकता है। भानुदासकी सत्यनिष्ठा, उनकी एकविध भक्ति और उनका शुद्धाचरण इत्यादि गुणोंका विचार करनेसे यही प्रतीत होता है कि '*शुचीनां श्रीमता गेहे*' एकनाथ एक योगभ्रष्ट महात्मा ही उत्पन्न हुए। इससे शुद्ध कुल-परम्पराकी रक्षाका कितना महत्त्व है यह भी प्रकट होता है।

एकनाथके पिता सूर्यनारायणका नामकरण भानुदासने ही किया था और इसके बाद ही उनका देहावसान हुआ यह श्रीएकनाथके ही उपर्युक्त लेखसे स्पष्ट है। यह घटना शाके १४३५ (संवत् १५७०) के लगभग हुई होगी।

बाल्यकाल

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।

—गीता ६ । ४३

देह तो छोटी-सी ही होती है, पर उसके आत्मज्ञानकी पौ फटती है और ऐसा प्रकाश फैलता है जैसा सूर्यके आगे उसका अपना प्रकाश फैलता है। उसे अवस्थाकी प्रतीक्षा नहीं करनी पडती, वयस्की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती, बचपनमें ही सर्वज्ञता उसके गलेमें जयमाल पहनाती है।

—ज्ञानेश्वरी ६ । ४५२-५३

भानुदासने अपने पुत्रका नाम 'चक्रपाणि' और पोतेका नाम 'सूर्यनारायण' रखा। सूर्यनारायण शिशु ही थे जब भानुदास परलोक सिधारे। इसके बीस वर्ष बाद—शाके १४५५ के लगभग—सूर्यनारायणके, रुक्मिणीके गर्भसे 'एकनाथ' उत्पन्न हुए। एकनाथके जन्मकालमें मूल नक्षत्र पडा था। इससे जन्मते ही पिताका और कुछ ही काल बाद माताका देहान्त हो गया। दादा और दादी, इन्हें बचपनमें प्रेमसे एका (एक्या) कहकर पुकारते थे। जन्मते ही मा-बापको ग्रास करके बचे हुए एकनाथके नामका, अध्यात्मदृष्टिसे, जो विलक्षण और गम्भीर अर्थ होता है उसे स्वय एकनाथने ही अपने कुछ अभंगोंमें इस प्रकार व्यक्त किया है—'मूलके मूलमें ही एका पैदा हुआ इससे

सेवा की और स्वय चिद्भानु होकर, मानाभिमानको जीतकर जो 'भगवत्पावन' हुए, जिनकी 'पदवन्ध-प्राप्ति'से श्रीविट्ठल-मूर्तिके दर्शन हुए। उन भानुदासके पुत्र चक्रपाणि हुए, चक्रपाणिके सुलक्षण सुतका नाम सूर्य रखकर भानुदास निजमे निज होकर रहे। उन सूर्यके प्रभा-प्रताप-किरणसे माता रुक्मिणी प्रसूत हुई जो मेरी माता हैं। ग्रन्थारम्भमें पूर्वजमालाको यह वन्दन किया है। यह मेरी भाग्यलीला धन्य है जो ऐसे वैष्णवकुलमें मेरा जन्म हुआ।'

इन उद्गारोसे यह माळूम हो जाता है कि एकनाथ भानुदासको कितना मानते थे। भानुदासके कारण हमारा वंश भगवान्को प्रिय हुआ और ऐसे वैष्णव पवित्र कुलमें मेरा जन्म हुआ यह मेरा अहोभाग्य है, इत्यादि प्रेमभरे उद्गार हृदयको हिलानेवाले हैं। बड़े सात्त्विक अभिमानके साथ एकनाथ कहते हैं कि भानुदासके पावन कुलमें मेरा जन्म हुआ इसीसे भगवत्-भक्तिमे मेरी प्रीति हुई! इस वैष्णव-कुलमें जन्म होनेपर अपनी 'भाग्यलीला' को एकनाथने 'धन्य' कहा है। इस धन्योद्गारका मर्म अनुभवसे ही जाना जा सकता है। भानुदासकी सत्यनिष्ठा, उनकी एकविध भक्ति और उनका शुद्धाचरण इत्यादि गुणोका विचार करनेसे यही प्रतीत होता है कि *'शुचीनां श्रीमता गेहे'* एकनाथ एक योगभ्रष्ट महात्मा ही उत्पन्न हुए। इससे शुद्ध कुल-परम्पराकी रक्षाका कितना महत्त्व है यह भी प्रकट होता है।

एकनाथके पिता सूर्यनारायणका नामकरण भानुदासने ही किया था और इसके बाद ही उनका देहावसान हुआ यह श्रीएकनाथके ही उपर्युक्त लेखसे स्पष्ट है। यह घटना शाके १४३५ (संवत् १५७०) के लगभग हुई होगी।

बाल्यकाल

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।

—गीता ६ । ४३

देह तो छोटी-सी ही होती है, पर उसके आत्मज्ञानकी पौ फटती है और ऐसा प्रकाश फैलता है जैसा सूर्यके आगे उसका अपना प्रकाश फैलता है। उसे अवस्थाकी प्रतीक्षा नहीं करनी पडती, वयस्‌की प्रतीक्षा नहीं करनी पडती, बचपनमें ही सर्वज्ञता उसके गलेमें जयमाल पहनाती है।

—ज्ञानेश्वरी ६ । ४५२-५३

भानुदासने अपने पुत्रका नाम 'चक्रपाणि' और पोतेका नाम 'सूर्यनारायण' रखा। सूर्यनारायण शिशु ही थे जब भानुदास परलोक सिधारे। इसके बीस वर्ष बाद---शाके १४५५ के लगभग---सूर्यनारायणके, रुक्मिणीके गर्भसे 'एकनाथ' उत्पन्न हुए। एकनाथके जन्मकालमें मूल नक्षत्र पड़ा था। इससे जन्मते ही पिताका और कुछ ही काल बाद माताका देहान्त हो गया। दादा और दादी, इन्हें बचपनमें प्रेमसे एका (एक्या) कहकर पुकारते थे। जन्मते ही मा-बापको ग्रास करके बचे हुए एकनाथके नामका, अध्यात्मदृष्टिसे, जो विलक्षण और गम्भीर अर्थ होता है उसे स्वयं एकनाथने ही अपने कुछ अभंगोंमें इस प्रकार व्यक्त किया है---'मूलके मूलमें ही एका पैदा हुआ इससे

लिये भक्त लोग सासारिक बातोमे भी हर जगह ऐसा उपाय किये रहते हैं कि जिससे सदा भगवान्का स्मरण होता रहे । नामकरण भी ऐसा ही एक उपाय है । भक्तोंके सासारिक व्यवहारके नाम भी भगवान्का स्मरण करानेवाले होते हैं। अन्दर, बाहर सर्वत्र भगवान्का ही ध्यान और दर्शन करते हुए भक्त ससारको ही ईश्वररूप बना देते है। नामोच्चारणके साथ नामातीतका स्मरण हो यही नामकरणका हेतु होता है। श्रीमद्भागवतके छठे स्कन्धमें अजामिलकी कथा है। अजामिल महापापी था पर उसने अपने लाडले बेटेका नाम 'नारायण' रखा था, इससे जहाँ-तहाँ 'नारायण' का नामोच्चारण करते-करते उसकी वाणी पवित्र हो गयी। नारायण-नामका कुछ ऐसा चसका उसे लग गया कि प्राणोत्क्रमणके समय विष्णु भगवान्के दूत उसे वैकुण्ठ-धाम ले जानेके लिये आये। पवित्र नामोकी कुछ ऐसी महिमा है कि उनके साथ पवित्र विभूतियोंका स्मरण होता है, उनका चरित्र सामने आ जाता है और उसीमेंसे अपने उद्धारका मार्ग भी निकल पड़ता है। पवित्र नामके सात्त्विक सस्कारसे वाणी पवित्र हो जाती है, उससे मन और बुद्धिपर भी दिव्य संस्कार होता है। भक्तोंकी रक्षा और दुष्टोंके नाशके लिये भगवान्ने अपने हाथमें चक्र धारण किया है इसका सदा स्मरण रहे। इसलिये भानुदासने अ[illegible] पुत्रका नाम चक्रपाणि रक्खा। भानुदासपर उनके बचपनमें सूर्यनारायणने ब्राह्मण-वेशमें आकर अनुग्रह [illegible]
[illegible] रखनेके लिये उन्होंने अपने पोतेका न[illegible]
परम्परा आगे भी चली। 'एकनाथ'

एकनाथने अपने पुत्रका नाम 'हरि' रखा और अपनी दो पुत्रियोंके नाम 'गगा' और 'गोदा' रखकर अपने काशीवास तथा नित्यके पैठणवासकी सगिनी गोदाका स्मरण जागृत रखा। गोदाका यारका नाम उन्होंने 'लीला' रखा था सो भी भगवन्मायाका ही स्मरण था। मानो 'एकनाथ' रूप पुरुषोत्तमके घर इस प्रकार 'हरि' और 'लीला' ये भाई-बहन खेलने लगे! लीलाके पुत्रका नाम भी एकनाथने 'मुक्तेश्वर' रखा! एकनाथकी स्त्रीका नाम गिरिजा था। भानुदासके कुलमें सबके ये नाम भी उनके घरमें विलास करनेवाली भगवद्भक्तिका ही स्मरण करानेवाले हैं, इसीलिये यहाँ इस बातका इतना विस्तार किया गया है।

एकनाथ बचपनसे ही बड़े बुद्धिमान् और श्रद्धावान् थे। श्रद्धा और मेधा उनके जन्मकालमें ही उनके साथ उत्पन्न हुई थीं, अथवा यह कहिये कि इनका स्नेह उन्होंने पूर्वजन्ममें ही प्राप्त किया था। स्नान-सन्ध्या, हरिभजन, पुराणश्रवण और देवपूजनमें उनकी बड़ी प्रीति थी। हाथमें करताल लेकर या कन्धेपर कलछुल या ऐसी ही कोई चीज रखकर और उसीको वीणा समझकर वह भजन करते या पत्थर सामने रखकर उसपर फूल चढाकर 'राम-कृष्ण-हरि' कहते हुए नाचने लगते। कोई कथावाचक या कीर्तन करनेवाले हरिभक्त कहींसे आ जाते तो उन्हें दण्डवत् करते और ऐसी एकाग्रताके साथ कथा सुनते जैसे सब कुछ समझ रहे हों। कोई कुछ कहता तो परिप्रश्न करके वक्ताको रिझाते। दादा पूजामें बैठते तब उन्हींके पास बैठकर पूजा-कर्ममें उनकी सहायता करते

गुरु जनार्दन स्वामी

गुरु ही माता, गुरु ही पिता और गुरु ही हमारे कुलदेव हैं। महान् संकट पड़नेपर आगे और पीछे वही हमारी रक्षा करनेवाले हैं। यह काय, वाक् और मन उन्हींके चरणोंमें अर्पण है। एका जनार्दनकी शरणमें है। गुरु एक जनार्दन ही हैं।

—एकनाथ

जनार्दन स्वामी पहले चालिसगाँवके अधिवासी और वहाँके देशपाण्डे थे। यह श्रीआश्वलायन सूत्रके ऋग्वेदी देशस्थ ब्राह्मण थे। इनका जन्म शाके १४२६ फाल्गुन कृ० ६ को हुआ (संवत् १५६१ चैत्र कृ० ६)। पूर्व-कर्म-ऋणानुबन्धसे इन्हें यवनराज्यकी नौकरी करनी पड़ी। इसमें इनकी पदवृद्धि भी बहुत हुई, आखिरको ये देवगढ या दौलताबादके बडे हाकिम हुए, मुसलमान-बादशाहके बडे विश्वासपात्र सलाहकार भी हुए। बड़े वीर, दृढ-स्वभाव, नियमी और तेजस्वी पुरुष थे। अपने काममें बडे दक्ष होनेके कारण राज्यमें इनका बडा दबदबा था। तथापि इनका सबसे अधिक यश यही फैला हुआ था कि यह बडे साधु पुरुष हैं और उस जमानेमें भी इनकी स्वधर्मनिष्ठाका डका चारों ओर बज रहा था। यह गुरु दत्तात्रेयके उपासक थे और उपास्यदेवके सगुणरूपका दर्शन इन्हे प्रत्यक्षमें होता था। ब्राह्ममुहूर्तमें उठनेके समयसे लेकर मध्याह्नतक यह स्नान-सन्ध्या, समाधि और श्रीदत्त-सेवामें ही लगे रहते थे। मध्याह्नके बाद यह कचहरीका काम देखते थे। पुन साय-सन्ध्या आदि करके रातको 'ज्ञानेश्वरी' और 'अमृतानुभव' का

निरूपण करते थे। इनका समाधि लगानेका स्थान एकान्तमे था और ऐसा प्रबन्ध था कि उस ओर कोई जाने नहीं पाता था। यह बड़े दयालु और न्यायनिष्ठ थे, सबपर इनकी वैसी ही धाक भी थी। इनके लिये, बादशाही हुक्मसे, प्रति गुरुवार (गुरु दत्तका दिन) को देवगढ़की सब सरकारी कचहरियोंमें छुट्टी रहा करती थी। योगियोंके लिये भी जो सेवाधर्म अगम्य है, कहते हैं उसको निबाहते हुए यह स्वधर्मके आचरणसे जरा भी कभी च्युत नहीं हुए। प्रपञ्च और परमार्थ दोनों ही उत्तम रीतिसे चलाते थे। श्रीदत्त भगवान्‌के सगुण साक्षात्कारके प्रभावसे समता, शान्ति और अनासक्तिका इनमें अखण्ड निवास था। इनके शरीरसे विलक्षण तेज निकलता था। 'बाह्य कर्मोंद्वारा धुलकर स्वच्छ और अन्तर्ज्ञान-से उज्ज्वल हुए' इन भक्ति-ज्ञान-वैराग्यकी मूर्तिको हिन्दू-मुसलमान सभी वन्दनीय मानते थे। जनार्दन स्वामीकी भक्तिसे प्रसन्न होकर भगवान् दत्तात्रेय देवगढ़में विराजने लगे, इससे तथा वहाँ होनेवाले नित्य भजन-पूजन और आत्मचर्चाके दिव्य परिमलसे देवगढ़ और उसके आसपासका क्षेत्र पुण्य-पावन और परम आह्लादप्रद हो गया।

श्रीदत्त भगवान्‌ने जनार्दन स्वामीपर अनुग्रह किया और उन्हें स्वरूपानुभव देकर कृतार्थ किया। उस प्रसंगका वर्णन स्वयं एकनाथ महाराज अपनी भागवत (अ० ९) में सहज स्फूर्तिसे कर गये हैं। वह कहते हैं—'गुरुसे मिलनेकी महाराजको ऐसी अनन्य चिन्ता हुई कि सद्गुरुके चिन्तनमें वह तीनों अवस्थाएँ भूल गये। भगवान् भावके भूखे हैं। इनकी इस दृढ़ अवस्थाको जानकर

श्रीदत्त भगवान् प्रकट हुए और इनके मस्तकपर उन्होंने हाथ रखा। हाथ रखते ही सम्पूर्ण बोध हो गया। इस मिथ्या प्रपञ्चका जो मूल स्वरूप है वह आत्मबोधसे ज्ञात हो गया। कर्म करके भी जो अकर्ता है उसीने 'अकर्तात्मबोध' करा दिया, देहमें रहकर भी विदेहता कैसे होती है वह भी तत्त्वत ज्ञात हो गया। गृहस्थाश्रमको छोडे बिना, कर्मरेखाको लँघे बिना, निज व्यापारमें लगे रहनेकी अवस्थामें जो बोध सर्वथा नहीं होता वह बोध मनको प्राप्त हो गया, मनका मनपन छूट गया, उस अवस्थाको सँभालना कठिन हो गया, जनार्दन महाराज मूर्छित हो गये। गुरु दत्तात्रेयने उन्हें तत्त्वत चैतन्य किया और कहा, 'भक्त सत्त्वावस्थामें रहता है, उसे भी आत्मसात् करके निजबोधमें रहो।' पूजाविधि करके जब जनार्दन महाराज चरणोंपर गिरे तब गुरु दत्तात्रेय अपनी योगमायाके योगसे अदृश्य हो गये।'

श्रीदत्तात्रेयने चौबीस गुरु किये थे इसी प्रसगकी कथा विस्तार-पूर्वक तीन अध्यायोंमें कहकर दत्तात्रेयकी शिष्य-परम्परा बतलाते हुए एकनाथ महाराज ऊपर दी हुई रहस्य-कथा कह गये हैं। इतने रहस्यकी बात सबसे कहने योग्य तो नहीं मालूम होती। कारण, कलियुगमें श्रद्धाहीन तर्कवादियोंकी ही भरमार होनेसे ये लोग इसपर यह कहनेमें भी नहीं चूकेंगे कि एकनाथ महाराजने यह अच्छा परिहास किया! ऐसे ही लोगोंका स्मरण करके एकनाथ महाराजको पीछे यह खयाल हुआ कि गुरुके सम्बन्धमें यह रहस्य प्रकट करनेमें भूल हुई। तथापि 'दत्तात्रेय-शिष्य कथन करते हुए

जनार्दनका स्मरण हुआ' और देहका ध्यान न रहनेसे सद्गुरु-प्रेमके आवेशमें सद्गुरुके चरित्रकी यह अत्यन्त महत्त्वकी बात भी कह गये। भक्तोंपर अवश्य ही उन्होंने यह बडा उपकार किया।

ऊपर एकनाथ महाराजने सद्गुरु-चरित्रके महत्त्वपूर्ण प्रसंग-का जो वर्णन किया है उसका अब थोडा विचार करें। सबसे पहले हमें यह बात अच्छी तरहसे ध्यानमें रखनी चाहिये कि परमात्मापर पूर्ण निष्ठा रखकर तन्मय होनेवाले जीवके उद्धारके लिये परमात्मा सगुणरूपसे प्रत्यक्ष प्रकट होते हैं! इतना बडा अधिकारी, सत्त्वसशुद्ध जीव विरला ही होता है इसलिये ऐसी बातें भी जहाँ-तहाँ सबके देखनेमें नहीं आतीं, पर पापी जीवोंको जिस बातका अनुभव नहीं होता उसे वे भले ही मिथ्या कहें, किन्तु इससे वह बात मिथ्या नहीं होती। किसी भी शास्त्रके सिद्धान्त उस शास्त्रके जाननेवालोंके मुखसे ही जाने जा सकते हैं। रोगकी परीक्षा वैद्य, हीरेकी जौहरी और कुस्तीकी उस्ताद ही कर सकते हैं। इस प्रकार प्रत्येक शास्त्रका मर्मज्ञ अनुभवी ज्ञाता कम-से-कम अपने शास्त्रके सम्बन्धमें यदि प्रमाण माना जाता है, तब ससारके सब शास्त्र जिस अध्यात्मशास्त्रके पसगेमें भी नहीं हैं, उसकी गूढ बातोंकी पहचान साधु-महात्माओंसे ही केवल पूछी जा सकती है, यह स्पष्ट है। सामान्य मनुष्य, विषयी-विलासी जीव या साधना करनेवाले साधक भी सिद्ध पुरुषोंके अनुभवकी ठीक कल्पना कैसे कर सकते है? इसलिये साधु-महात्माओंके चरित्रोंमें यदि कोई ऐसी बातें आ जावँ जिनकी कल्पना सामान्य मनुष्य नहीं कर सकते तो इतनेसे उन

बातोंको मिथ्या कहकर उड़ा देनेका कोई दुस्साहस न करे। साधु बनकर साधुको देखे, भक्त होकर भक्तको जाने और ज्ञानी होकर ज्ञानीको पहचाने। जिसे इतना अधिकार न प्राप्त हुआ हो वह साधु-महात्माओंकी इन बातोंको मूर्खताभरी और मिथ्या कहनेके फेरमें न पड़े, इसीमें उसका हित है। सूर्यकी बदनामी करनेसे उसका प्रकाश थोड़े ही कम होता है? साधु-महात्मा सूर्यके समान हैं। उनकी वास्तविक योग्यता विषयोंके अन्धकारमें अपना प्रपञ्च रचनेवाले जुगनू नहीं कर सकते। सगुण-साक्षात्कार अथवा सतोंके चरित्रोंमें देख पडनेवाले अन्य चमत्कार मिथ्या नहीं है। भानुदास अथवा एकनाथ या ऐसे ही अन्य किसी भी स्वस्वरूपको प्राप्त महात्माके चरित्रमें दिखायी देनेवाले ये चमत्कार कोई अद्भुत व्यापार नहीं हैं। प्रत्युत इन सब चरित्रोंको महात्माओंके अनुभवकी दृष्टिसे ही देखना चाहिये। भक्तोंको सगुण-साक्षात्कार होता है। जनार्दन स्वामीको श्रीदत्त भगवान्के दर्शन हुए, अनुग्रह हुआ और नित्य-दर्शन भी हुआ करते थे। जनार्दन स्वामीने एकनाथ महाराजको भी श्रीदत्त-दर्शन करा दिये। एकनाथ महाराजके द्वारपर दासोपन्तने श्रीदत्त भगवान्को चोपदारके भेसमें देखा। एकनाथ महाराजके घरपर श्रीदत्त भगवान् बारह वर्षतक श्रीखण्डिया बनकर काम करते रहे। इन सब बातोंको हमलोग चमत्कार कहते हैं, श्रद्धालु लोग इन बातोंको सत्य समझते हैं, अज्ञानी लोग इन्हें मिथ्या मानते हैं। पर ये भक्तोंके अनुभवकी सत्य बातें हैं। अस्तु।

जनार्दन स्वामीके चरित्रके अत्यन्त महत्त्वके प्रसगकी अर्थात् श्रीदत्त भगवान्के अनुग्रहकी साक्षी स्वयं जनार्दन स्वामीके शिष्य-से ही मिली है। यह बड़े आनन्दकी बात है। जब जनार्दन स्वामीको सद्गुरु-प्राप्तिकी ऐसी धुन समायी कि जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओंमें इसके सिवा उन्हें और कुछ सूझता ही नहीं था, तब भावभक्तिके भोक्ता भगवान् दत्तात्रेय साक्षात् प्रकट हुए और उनके सिरपर उन्होंने अपना हाथ रखा। भगवान्के हाथका स्पर्श होते ही स्वरूप-साक्षात्कार हो गया—'कर्म करके भी अकर्ता' अर्थात् अकर्तात्मबोध हुआ और इसी देहमें विदेहता प्रकट हो गयी। गृहस्थाश्रमको बिना छोडे, कर्ममर्यादाको बिना लाँघे, अपना कर्म करते हुए आत्मानुसन्धान न छोडनेका कौशल उन्हें प्राप्त हो गया और उसके साथ ही मनका मनस्त्व छूट जानेसे वह मूर्छित हो गये, तब श्रीदत्त भगवान्ने उन्हें चैतन्य किया और सात्त्विकताका यह उफान आत्मसात् करके परमानन्दके निज-बोधसे सहज भावसे रहना सिखाया। अनन्तर श्रीदत्त भगवान्की पूजा करके जनार्दन स्वामी उनके चरणोपर गिरे, इसी अवस्थामे भगवान् अपने योगमायाके बलसे अन्तर्धान हो गये। जनार्दन स्वामी-को इस प्रकार जो भगवान्के प्रथम दर्शन हुए उसका यह वर्णन उनके प्रधान शिष्यने किया है। 'गृहस्थाश्रमको बिना छोडे, कर्म-रेखाको बिना लाँघे' निजबोधसे रहनेका उपदेश श्रीदत्त भगवान्ने जनार्दन स्वामीको किया और वही उपदेश उनसे एकनाथ महा-राजको मिला। जनार्दन स्वामी अथवा एकनाथ महाराजको गृहस्था-श्रममें असंग होकर अर्थात् अकर्तात्मभावके साथ रहनेका जो उपदेश

श्रीदत्त भगवान्ने किया उसे यदि हमलोग ध्यानमें रखकर वैसा अपना जीवन बनावें तो गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी भगवत्प्राप्ति होगी। इसमें कोई सन्देह नहीं। अस्तु, जनार्दन स्वामी-जैसे पूर्ण पुरुषने देवगढ़से कुल बीस ही मील दूर पैठणमें रहनेवाले हमारे बालभागवतको अपनी अचिन्त्य शक्तिसे अपनी ओर खींच लिया और उसपर कृपा करके उसे जगदुद्धार करनेमें समर्थ किया, यह बड़े आनन्दकी बात हुई।

जनार्दन पन्तके दर्शन जब पहले-पहल एकनाथको हुए तब दोनोंको ही बडा आनन्द हुआ। ध्रुवके समान विरक्त हुए एकनाथकी उस वामनमूर्तिको देखकर जनार्दन स्वामी बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्होंने उन्हें बडे प्रेमसे अपने पास रख लिया। गुरुका सदाचार, ब्रह्मनिष्ठा और प्रेमी हृदय देखकर एकनाथकी चित्तवृत्ति उनके चरणोंमें सलग्न हो गयी। एकनाथने लगातार छ वर्ष बड़े भावभक्तिसे जनार्दन स्वामीकी अपूर्व सेवा की और वह उनके अनुग्रहके पूर्ण पात्र हुए। एकनाथकी गुरुसेवाका ऐसा क्रम था—गुरु सोकर उठें इससे पहले शिष्य जाग उठें। रातको गुरुके पैर दाबें, गुरुके सोनेपर उनके पायताने स्वयं सो रहें। दिन-रात, घर-द्वार सर्वत्र गुरुकी सेवामें तत्पर रहकर बड़े उत्साहसे, जो काम सामने आ जाय उसे आज्ञाकी बाट न जोहकर, कर डालें। भोजनके पश्चात् बडे प्रेमसे पान लगावें और गुरुके हाथमें दें और गुरु विश्राम करने लेट जायें तब पंखा झलें या अन्य प्रकारसे सेवा करें। गुरुकी विश्रान्तिमें ही अपनी विश्रान्तिका अवसर निकाल लें।

गुरु स्नान करनेके लिये उठें तब उन्हें स्नानके लिये पात्रमें जल भर दें, धोती चुनकर हाथमें दें, पूजाकी सब सामग्री जुटा दें और पूजाके समय सदा सन्निध रहकर जब जो वस्तु आवश्यक हो, आगे कर दें। गुरु जब समाधि लगाते तब शिष्य द्वारपर खड़े रहकर बाहरकी सब उपाधियोंका निवारण करते। गुरु-गृहमें कई आश्रित, टहलुए और नौकर-चाकर थे, पर उनकी कोई राह न देखकर स्वयं ही बड़े प्रेम और उत्साहसे तन-मन लगाकर गुरुकी परिचर्या करते। ईश्वरसे यही प्रार्थना करते कि गुरु-सेवा करनेकी मुझे इतनी सामर्थ्य दें कि सब नौकर-चाकरोंका काम मैं अकेला ही कर सकूँ। वह अपनी भूख-प्यासकी सुध न रखकर गुरु-की भूख-प्यासका ही खयाल रखते। अपने आराम करने या सोने-का जरा भी खयाल न रखकर इसी बातमें दक्ष रहते कि गुरुकी निद्रामें जरा भी कोई बाधा न पड़े। अपना भोजन नियमित रख-कर ऐसी चेष्टा करते कि गुरु यथेच्छ भोजन पावें। जरा भी अधिक भोजन होनेसे सुस्ती आ जायगी और इससे गुरु-सेवामें बाधा पड़ेगी, इसलिये युक्ताहार-विहार करते। गुरुका सन्तोष ही इनका सन्तोष था, गुरुके शब्द ही इनका शास्त्र था, गुरुकी मूर्ति ही इनका परमेश्वर, गुरुका घर ही इनका स्वर्ग, गुरुके आप्त ही इनके आप्त, यही नहीं, '*गुरुः साक्षात्परं ब्रह्म*' यही इनकी भावना थी और इसी परम शुद्ध भावनासे यह गुरुकी अखण्ड सेवा करते थे। इन छ वर्षोंमें एकनाथको पैठणका स्मरण भी नहीं हुआ, यही क्यों, उन्हें अपनी देहका भी विस्मरण हो गया। गुरु-सेवाको ही उन्होंने परम धर्म माना और अवस्थात्रयमे गुरुके

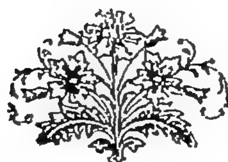
सिवा उन्होंने और किसी वस्तुका चिन्तन भी नहीं किया। गुरु-सेवा करते-करते एकनाथके सब मनोविकार शान्त हो गये, भूख-प्यास आदि प्राणधर्म छूट गये, राग-लोभादि रिपु शरीर छोड़-कर चले गये, इन्द्रियाँ वासनारहित हो गयीं, काया तेजोमय हो गयी, अन्त समाधानका तेज रोम-रोमसे प्रकट होने लगा। गुरु-सेवासे एकनाथ देहाभिमानशून्य हो गये। इस प्रकार गुरु-सेवासे उनकी चित्तशुद्धि हुई और वह गुरुप्रसादको प्राप्त हुए। ऐसी शिष्य-वृत्तिके साथ रहते हुए उन्होंने साक्षात् गुरुमुखसे ज्ञानेश्वरी, अमृतानुभव और श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थ सुने और उससे उनका आत्मबोध जागृत हो गया। केवल संसारके विषयोंमें पड़े हुए लोगोंको इस विषयमय संसारके सिवा और कुछ नहीं सूझता, उसी प्रकार उनके श्रवण, मनन, निदिध्यासन और साक्षात्कारके लिये गुरुके सिवा और कोई विषय ही नहीं रह गया। जो अधकचरे पारमार्थिक हैं उनकी बड़ी दुर्दशा होती है। श्रवण वे परमार्थका करते हैं, मनन विषयोंका करते हैं, निदिध्यासन करते हैं प्रपञ्चका और साक्षात्कार होता है उन्हे केवल दुःखका। एकनाथ गुरु-सेवासे अपनेको धन्यभाग समझते थे। जो भक्त नहीं हैं उन्हें सेवामें बड़ा कष्ट मालूम हो सकता है, पर एकनाथ-जैसे गुरु-भक्तके लिये वही सेवा परमामृतदायिनी होनेसे उसीको उन्होंने अपना महद् भाग्य समझा। उन्होंने स्वयं स्वलिखित भागवतमें गुरु और गुरु-भजनकी महिमा गायी है। कहा है कि, 'भव-सागरसे पार उतरनेके लिये मुख्य साधन गुरु-भजन ही है।' और गुरुका लक्ष क्या है? एकनाथ महाराज कहते हैं कि, 'सद्गुरु वही है

आत्मस्वरूपका बोध कराकर समाधान करा दे।' लौकिक विद्याओं-के लौकिक गुरु अनेक हैं, पर सद्‌गुरु वही है जो आत्मस्वरूपमें स्थित करा दे। महद् भाग्यसे ही ऐसे सद्‌गुरु प्राप्त होते हैं। और ऐसे सद्‌गुरुकी सेवा सत् शिष्य भी कैसे करता है? एकनाथ महाराज वर्णन करते हैं—'गुरु ही माता, पिता, स्वामी और कुल-देवता हैं। गुरु विना और किसी देवताका स्मरण नहीं होता। शरीर, मन, वाणी और प्राणसे गुरुका ही अनन्य ध्यान हो यही गुरु-भक्ति है। प्यास जलको भूल जाय, भूख मिष्टान्न भूल जाय और गुरु-चरण-संवाहन करते हुए निद्रा भी भूल जाय। मुखमें सद्‌गुरुका नाम हो, हृदयमें सद्‌गुरुका प्रेम हो, देहमें सद्‌गुरुका ही अहर्निश अविश्रान्त कर्म हो। गुरु-सेवामें ऐसा मन लगे कि स्त्री, पुत्र, धन भी भूल जाय, अपना मन भी भूल जाय, यह भी ध्यान न हो कि मैं कौन हूँ।'

गुरु ही भगवान्, गुरु ही परब्रह्म और गुरु-भजन ही भगवद्-भजन है। गुरु और भगवान् एक ही हैं; यही नहीं प्रत्युत 'गुरु-वाक्य ही ब्रह्मका प्रमाण है अन्यथा ब्रह्म केवल एक शब्द है।' गुरु-सेवाका मर्म एकनाथ महाराज एक दूसरे स्थानमें बतलाते हैं—'गुरुको आसन, भोजन, शयन कहीं भी न भूले। जिसको गुरु माना उसे जाग्रत् और स्वप्नके सारे निदिध्यासनमें गुरु माना। गुरु-स्मरण करते-करते भूख-प्यासका विस्मरण हो जाता है और देह एवं गेहका सुख भी भूल जाता है, उनके बदले सदा परमार्थ ही सम्मुख रहता है।'

मे भी कभी प्रमाद नहीं होता। कोई भी काम हो उसे जितना बेभूल साधु-सन्त कर सकते हैं उतना प्रापञ्चिक जन नहीं कर सकते। सन्त व्यवहारज्ञ और व्यवहार-कुशल होते ही हैं, केवल व्यवहारको ही सार समझनेवाले लोग व्यवहारमें भी भूल करते हैं, वे परमार्थसे तो गिरे ही रहते हैं। एकनाथकी श्रद्धा, प्रेम और विश्वास देखकर जनार्दन स्वामीने उन्हें हिसाब-किताबका काम सौंपा। गुरु-सेवामें कोई भी त्रुटि न करके एकनाथ इस कामको भी गुरु-सेवा समझकर ही बडे ध्यानसे करते थे। एक दिन हिसाबमें एक पाईका हिसाब नहीं मिलता था, इस भूलको ढूँढ निकालनेके लिये, अन्य सेवा-कार्यसे निवृत्त होनेपर, वह हिसाब लेकर रोशनीके सामने बैठ गये। ढाई पहर रात बीत गयी, फिर भी हिसाब नहीं मिला। शरीर थका, पर उस थकावटको उन्होंने कुछ नहीं समझा, एक क्षणके लिये भी उन्होंने अँगडाईतक नहीं ली, भोजनोत्तर जल पीनेसे निद्रा, आलस्य आ जायगा इसलिये जल भी नहीं पीया, इस प्रकार जो काम उन्होंने हाथमें लिया था उसे उत्तम रीतिसे पूरा करनेमें उन्होंने कोई भी त्रुटि नहीं की। काम छोटा हो या बड़ा, उसकी जिम्मेदारी जब सिरपर ली है या आ पडी है तब उसे स्वधर्म समझकर अत्यन्त श्रद्धाके साथ करना चाहिये, यही श्रेष्ठ पुरुषोंका मन.स्वभाव होता है। कर्तव्यके लिये ही कर्तव्य करना महान् पुरुषोंका शील है। इसी शीलके अनुसार एकनाथ एक पाईकी भूल ढूँढ निकालनेमें इस प्रकार लगे हुए थे। तीन पहर रात बीती तब जनार्दन स्वामी जागे और एकनाथ आसपास कहीं दिखायी

नहीं दिये, इसलिये वह पासके कमरेमें झाँकने लगे । कुछ देरमें एकनाथने पाईकी भूल ढूँढ़ निकाली । हिसाब मिला देखते ही उन्हें अत्यन्त हर्ष हुआ और उसी हर्षमें उन्होंने एक बार ताली बजायी । जनार्दन स्वामीको बड़ा कुतूहल हुआ । आगे बढ़कर उन्होंने पूछा, 'यह हर्ष किस बातका हो रहा है ?' एकनाथने सारी बात कह दी । तब जनार्दन स्वामी बोले, 'नाथ ! एक पाईकी भूलका पता लगते ही जब तुम्हें इतना आनन्द हो रहा है तब संसारकी जो बड़ी भूल तुम्हारे हाथों हुई है उसका पता लगनेसे भला बताओ तो तुम्हें कितना अधिक आनन्द होगा ? तात ! ऐसा ही लय यदि श्रीदत्त-चिन्तनमें कर दो तो भगवान् क्या कहीं दूर हैं ?' एकनाथको रोमाञ्च हो आया । उन्हें यह आशा बँध गयी कि अब गुरु महाराज भगवान्‌के दर्शन करा देंगे । इसी आशासे उत्कण्ठित होकर वह गुरुचरणोंमें लोट गये ।



श्रीदत्तकृपा और अनुष्ठान

एका (एकनाथ) ने जनार्दनकी शरणमें जाकर, आत्मदृष्टि पाकर परब्रह्ममूर्ति भगवान् दत्तको इन आँखोसे देखा ।

—एकनाथ

जनार्दन स्वामीका समाधि लगानेका स्थान देवगढपर उत्तर दिशामें निरालेमें था । उस स्थानके सामने एक सुरम्य सरोवर था, जिसके चारों ओर फल-पुष्पोसे शोभायमान नाना प्रकारके वृक्ष थे । उस ओर जानेका किसीको हुक्म नहीं था । वहाँ मनुष्योंके पैरोंकी आहट भी कभी सुनायी नहीं देती थी । वह रमणीय निर्जन स्थान समाधिके ही सर्वथा उपयुक्त था । उस शुचि-प्रदेशमें स्थिर आसन लगाकर जनार्दन स्वामी नित्य एक पहर समाधिका आनन्द लेते थे । गुरुवारका तो सारा दिन ही वहीं बीतता था । वहाँ एकनाथको गुरुके दर्शन और सम्भाषणका लाभ हुआ करता था । स्वामीकी एक बार इच्छा हुई कि एकनाथको भी श्रीदत्त-दर्शनका लाभ हो । उन्होंने एकनाथको पहलेसे यह समझा रखा कि 'यहाँ श्रीदत्त भगवान्के सिवा और कोई भी नहीं आता और भगवान् चाहे जिस भेसमें आयें उन्हें देखकर तुम घबराना नहीं ।' एकनाथ इस तरह श्रीदत्त भगवान्की बाट जोहते बैठे रहे । स्वामी पूजा कर चुके तब श्रीदत्त मलग (फकीर) के भेसमें प्रकट हुए । उनका सर्वांग चमडेसे ढका हुआ था, साथ कुतियाके रूपमें कामधेनु थी, नेत्र लाल-लाल थे । यह

यानक रूप देखकर एकनाथ कुछ चकित हुए। जनार्दन स्वामी और श्रीदत्त आत्मसुखकी बातें करने लगे। पीछे श्रीदत्तकी आज्ञासे जनार्दन स्वामीने उस कामधेनुको दुहकर दूध निकाला और मिट्टीके एक पात्रमें दोनोंने यथेष्ट भोजन करके अपनी अभिन्नता एकनाथको दिखा दी। भोजनके पश्चात् वह पात्र धोनेके लिये स्वामीने एकनाथके हाथमें दिया। एकनाथने जलसे उसको धोया, धोकर वही धोवन 'यही प्रसाद है, यही भागीरथी है, यही स्वानन्दवासका साधन है' कहकर बडी भक्तिके साथ प्राशन किया। यह जानकर श्रीदत्तने एकनाथको पास बुलाया। इसे परम प्राप्तिका समय जानकर एकनाथने दोनोंके चरणोंके सामने साष्टाङ्ग प्रणाम किया और हाथ जोडकर सामने खडे हो गये। उन्होंने देखा, गुरु ही तो परमगुरु हैं और परमगुरु ही गुरु हैं। इस अभेद-भावनासे क्षणकाल वह तटस्थ रहे। पीछे अपनी वृत्तिपर आये तब श्रीदत्तने उनकी ओर प्रसन्न वदनसे देखा और फिर जनार्दन स्वामीकी ओर देखकर कहा—'यह महाभागवत उत्पन्न हुआ है, इसके द्वारा भागवत-धर्मका प्रचार होगा। सहस्रों मनुष्यों-को यह भक्ति-पन्थमें लगा देगा और जड जीवोद्धार करनेवाले उत्तम ग्रन्थ भी निर्माण करेगा। भागवतपर इसका ग्रन्थ अपूर्व होगा।' यह कहकर श्रीदत्तने एकनाथको आलिङ्गन किया। तब जनार्दन स्वामीको परमानन्द हुआ और 'दत्त-जनार्दन-एकनाथ' तीनों समरस हो गये। एकनाथको जब श्रीदत्तने अपने रूपका दर्शन कराया तब दत्त, जनार्दन तथा अपनेसहित सकल विश्व उन्होंने अभेदरूपसे देखा। उस प्रसंगका वर्णन करते हुए एकनाथ

महाराज कहते हैं—'उसी एकका गुणगान करता हूँ, उसी एकका ध्यान करता हूँ, उसीको अगुणी देखता हूँ, उसीको सगुणी देखता हूँ और उसीको गुणातीत देखता हूँ।'

इसके अनन्तर श्रीदत्त अन्तर्धान हुए और जनार्दन स्वामी अपने कामपर गये। एकनाथको श्रीदत्त-दर्शनका परम आनन्द हुआ। जिस सगुण रूपको अपनी आँखों देखा वही अ—त्रि अर्थात् त्रिगुण-अतीत (त्रिगुणातीत) और अनसूया अर्थात् असूया-अतीत याने बुद्धि (बोध) इन्हीं दोके सयोगसे उत्पन्न हुआ निर्गुणरूप है। सगुण-निर्गुण एक ही हैं। दत्त ही कृष्ण हैं, वही विठ्ठल हैं और वही राम हैं। जिस स्वरूपमें उनका ध्यान किया जाय उसी रूपमें वह प्रकट होते हैं। वह दत्त हैं अर्थात् उन्होंने अपना रूप पहले ही 'दिया हुआ' है, वह साधनोंसे आगे प्राप्त होनेवाला, पहलेसे स्वत ही प्राप्त ! उसे प्राप्त करनेके लिये आयासकी कोई आवश्यकता नहीं। वह सहजसिद्ध है, केवल बुद्धिपर पड़ा हुआ देहाभिमानका परदा हटते ही वह दत्त ही है। जलपरकी काई हटा देनेसे जैसे शुद्ध जल आप ही सिद्ध है वैसे ही अपना स्वरूप भी सिद्ध ही है। इस प्रकार यह ज्ञात हुआ कि जो सगुण है वही निर्गुण है और जो निर्गुण है वही सगुण है। 'घृत जमा और वही पिघला, इससे उसका घृतत्व कहीं नष्ट नहीं हुआ, वैसे ही अमूर्त जो है वही मूर्त्तिमें आ गया, इससे उसका ब्रह्मत्व कहीं चला नहीं गया, वह मूर्त्तिमें भी बना ही हुआ है।' यह ज्ञान जब प्रत्यक्ष हुआ तब मुखसे 'दत्त, दत्त' का ही नामोच्चारण

करते हुए, आनन्दसे गाते-नाचते हुए एकनाथने श्रीदत्त भगवान्‌की पूजा की। उस समयके जो 'अभंग' हैं उनका मर्म इस प्रकार है—

(१)

'भगवान्‌का आवाहन किया पर इस आवाहनमें विसर्जनका कुछ काम नहीं। कारण, मेरे स्वामी देव दत्त सर्वत्र ओतप्रोत हैं। गाते भी नहीं बनता—जब चित्त उसीमें लीन होता है। एका जैसे जनार्दनमें है वैसे वह सारे विश्वमें परिपूर्ण है।

(२)

'चारों शरीरोंकी क्रियाएँ श्रीदत्तात्रेयको अर्घ्य दे दीं। जो-जो कर्म-धर्म, शुद्ध 'सबल' जैसा था, यथाक्रम अर्पण कर दिया। उचित-अनुचित जो कुछ इन्द्रियजात कर्म था, सब दे दिया। मेरा देव दत्त आत्मा एक जनार्दनमें स्वस्थ हो गया।

(३)

'सञ्चित और क्रियमाण सबका आचमन किया। जो प्रारब्ध शेष रहा उससे सद्‌गुरु दत्तका ध्यान करता हूँ। एका जनार्दनमें ही रहा, इसीका यह फल है कि सब मङ्गल हो गया।

(४)

'त्रिगुण सत्ता चलाता जो सब देवोंका जनिता है, उसके चरणोंकी शरण लेते ही सारी माया छूट गयी, सब भेदाभेद नष्ट हो गये· एका जनार्दनमें, जीव शिवमें लीन होकर मुक्त हो गया।

(५)

'सहस्रदल कमलाकार हार कण्ठमें अर्पण किये। सोलह, बारह, अठारह और चार पुष्प-भार माथेपर चढ़ाये, एका जनार्दनमें, अलिकुल निर्मल दत्त-चरणकमलमें अर्पित हो गया।

कभी कोई चिन्ता नहीं करनी पडी, 'योगक्षेम चलानेवाले गुरुदेव स्वयं समर्थ हैं और सब प्रकारसे वही रक्षा करेंगे' इसी दृढ़ निष्ठाके साथ उन्होंने तप आरम्भ किया। *'ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय चिन्तयेदात्मनो हितम्'* इस वचनके अनुसार ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर स्नान-सन्ध्यादि करके और पूर्वाभिमुख होकर सिद्धासनपर बैठ श्रीकृष्णकी मूर्तिका ध्यान करना ही उनका नित्यकर्म था। मनसे श्रीकृष्णकी मूर्तिका ध्यान और षोडशोपचारसे पूजा करते और गुरुदेवद्वारा निर्दिष्ट मार्गसे भगवत्प्राप्तिका अखण्ड साधन करते। भगवान्ने जैसा कि गीतामें कहा है, शुचि प्रदेशमें स्थिर आसन लगाकर—

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्॥ ६। १३॥
प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः॥ ६। १४॥

वह इस प्रकारका अभ्यासयोग करने लगे। यह अभ्यास करते हुए बाह्य स्फुरणकी गति बन्द हो गयी और इसी देहमें वह विदेहावस्थाका आनन्द भोग करने लगे। जनार्दन स्वामीने उन्हें ब्रह्मबोध करा दिया था और सगुण भक्तिका रहस्य भी बता दिया था। उसीके अनुसार वह भक्ति-सुखका आनन्द भोग रहे थे। ब्रह्मज्ञान बताकर सगुण भक्तिका उच्छेद करनेवाले जो गुरु हैं, जनार्दन स्वामी उनमेंसे नहीं थे। सगुण और निर्गुण एक ही हैं यही उनका बोध था। प्राणायाम, ध्यान, धारणा, ये सब भक्तिके साधन हैं। कर्म, ज्ञान, योग—ये सब साधन हैं

और श्रीहरि ही साध्य हैं, यही उन्होंने एकनाथको खूब अच्छी तरहसे समझा दया था। समुद्रमें जैसे लवणका कण घुल जाता है वैसे ही हरिरूपमें मिल जाना चाहिये, यही उनका उपदेश था। एकनाथने जो योगाभ्यास आरम्भ किया वह योगके लिये नहीं, भगवत्प्राप्तिके लिये किया। योगके लिये योग, तपके लिये तप, कर्मके लिये कर्म और ज्ञानके लिये ज्ञान प्राप्त करना, यह भागवत-धर्मकी शिक्षा नहीं है। भागवत-धर्मकी शिक्षा यह है कि योग, तप, कर्म और ज्ञान——ये सब भगवान्‌के लिये हैं। भगवान्‌के विना इनका कुछ भी मूल्य नहीं है। इनसे यदि भगवान्‌के दर्शन हों तभी इनका मूल्य है, यही भागवत-धर्मका मुख्य तत्त्व है। संस्कृतके श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीमद्भागवत तथा प्राकृतके ज्ञानेश्वरी और अमृतानुभव ग्रन्थ यही शिक्षा देते हैं और इन ग्रन्थोंका निरूपण गुरुमुखसे सुनकर नाथके चित्तमें भी यही शिक्षा जमी हुई थी। तदनुसार परम भक्तिके साथ वह श्रीकृष्णकी मूर्तिका ध्यान करते थे। इस अभ्यासका फल यह हुआ कि एकनाथको साक्षात् आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन हुए।

देवगढपर नाथ इस प्रकार महान् तप कर रहे थे। एक दिन नाथ जब समाधि लगाये हुए थे, एक बड़ा भारी काल-सर्प फुत्कार करता हुआ उनपर टूट पड़ा और उनके बदनमें लिपट गया। पर आश्चर्यकी बात यह हुई कि साम्य स्थितिका अनुभव करनेवाले एकनाथके अङ्गस्पर्शसे उसकी दंश करनेकी क्रूरबुद्धि नष्ट हो गयी और वह नाथके मस्तकपर फन फैलाकर झूमने लगा। समचित्त

अहर्निश स्मरण करनेसे परम रस लाभ होगा।' यह कहकर उन्होंने आगे कहा—

'सबके प्रति एक ही भाव रखो, हृदयमें द्वैत कहीं भी रहने मत दो। यही अनुभव सुगम और पार लगानेवाला है। इससे बहुतोंका उद्धार हुआ है। ध्रुव, उपमन्यु, विभीषण, नारद, गौएँ और गोपवृन्द इसीसे तर गये। देखो, भगवान् ईंटपर समचरण* ही खडे हैं, इसे ध्यानमें रखो।'

एकनाथने जनार्दनके रूपका ध्यान करते हुए तीर्थयात्रा की। उस समयके उनके आनन्दका वर्णन केशवने उनके चरित्रमें किया है—'मुखसे गुरुका नाम स्मरण हो रहा है। मनमें जनार्दनका ध्यान हो रहा है। सब इन्द्रियोंमें पूर्ण समाधान है। अपने ही रूपमें स्वतन्त्र, स्वच्छन्द विचर रहे हैं, जनार्दनका ऐसा ध्यान है कि जो जनार्दन हैं वही श्रीकृष्ण हैं, और जो श्रीकृष्ण हैं वही श्रीजनार्दन हैं। एकनाथ इस बोधसे सम्पन्न, आनन्द-चिद्घनसे बाह्य-अन्तर परिपूर्ण थे।'

इस मन स्थितिमें अखण्ड रहकर एकनाथने सम्पूर्ण तीर्थ-यात्रा की, पयोष्णी, नर्मदा, तापी, गङ्गा, यमुना, कावेरी, तुगभद्रा

---

* पण्ढरपुरके श्रीविट्ठल भगवान्‌का यह ध्यान प्रसिद्ध है—

समचरणसरोज सान्द्रनीलाम्बुदाभ
जघननिहितपाणि मण्डनं मण्डनानाम्।
तरुणतुलसिमालाकन्धर कञ्जनेत्र
सदयधवलहास विट्ठल चिन्तयामि॥

आदिमें शतश स्नान किये और आठों विनायक तथा बारहों ज्योतिर्लिङ्गोंके दर्शन किये। गोकुल, मथुरा, वृन्दावन आदि कृष्ण-कीर्तिसे सरसाये क्षेत्रोंमें विहार करके तथा वहाँका भक्ति-सुखानुभव प्राप्तकर एकनाथने गया, प्रयाग और काशीकी त्रिस्थली-यात्रा की। कहीं एक रात्र, कहीं त्रिरात्र और कहीं पञ्चरात्र ठहरे। अयोध्याकी यात्रा करके बदरिकाश्रम गये। निज धामको जानेके पूर्व श्रीकृष्णने उद्धवको उपदेश करके भागवत-धर्मका प्रचार करनेके लिये जिस स्थानमें भेजा था और जहाँसे उद्धवके शिष्य-प्रशिष्योंने भारतवर्षभरमें भागवत-धर्मका प्रचार किया, उस बदरिकाश्रममें एकनाथका चित्त बहुत ही रम गया। नाथ वहाँसे द्वारका गये। श्रीकृष्णकी लीलाका ध्यान करते हुए उन्होंने द्वारकाका सम्पूर्ण प्रदेश देखा और श्रीकृष्ण-प्रेमसे उनका अन्तःकरण भर गया। परम कृष्णभक्त एकनाथने द्वारकामें रहते हुए श्रीकृष्णकी सब लीलाओंका चिन्तन करके 'मुक्तिके परेकी पराभक्ति' का परम आनन्द अनुभव किया। द्वारकासे नाथ नरसी मेहताके जूनागढ़-स्थानमें आये और कुछ काल गिरनार-पर्वतपर रहे। वहाँसे डाकोर जाकर उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन किये और इस प्रकार यात्रा पूरी करते गोदावरीके किनारे-किनारे चलते हुए वह पैठणकी सीमामें आये और पहले जिस स्थानमें उन्होंने आकाशवाणीकी गम्भीर ध्वनि सुनी थी उस पिम्पलेश्वरके मन्दिरमें आकर ठहरे। उत्तरकी यात्रा पूरी करके नाथ अपनी जन्मभूमिमें लौट आये।

यहाँतक हम लोग श्रीनाथके साथ, उनके वृद्ध दादा दादीको भूल-से गये थे, अब उनकी सुध भी लेनी चाहिये।

मालूम हुआ कि गुरु-कृपा प्राप्त करके छ महीने पहले ही एकनाथ तीर्थ-यात्रा करने चले गये हैं। जब यह पता लगा तब पण्डितजीने गढ़पर रहनेवाले अन्य लोगोंसे नाथके सम्बन्धकी छोटी-मोटी सब बातें जाननेका पूरा उद्योग किया। पण्डितजी एकनाथसे और उनके दादा-दादीसे बड़ा स्नेह रखते थे। उन्होंने बड़ी आकुलताके साथ जनार्दन स्वामीको चक्रपाणिकी शोकाकुल अवस्था बता दी और उनसे चक्रपाणिकी ओरसे यह प्रार्थना की कि आप ऐसा आज्ञापत्र दीजिये कि तीर्थयात्रा करके जब एकनाथ पैठणको लौट आवें, तब दादा-दादीको छोड़कर फिर कहीं न जायँ और विवाह करके भानुदासके पवित्र वंशको आगे चलावें। स्वामीने भविष्यार्थको मनमें लाकर तदनुसार आज्ञापत्र दिया, उस आज्ञापत्रको लेकर पण्डितजी बड़ी जल्दी पैठणको लौट आये। यह शुभ समाचार उन्होंने उन वृद्ध और वृद्धाको सुनाया कि 'एकनाथ केवल जीते ही नहीं हैं, बल्कि गुरुकृपा प्राप्त करके तीर्थाटन करने गये हैं और जनार्दन स्वामीने यह आज्ञापत्र लिख दिया है कि वह यात्रासे लौट आनेपर गृहस्थाश्रम स्वीकार करके पैठणमें ही रहें।' आनन्दका यह समाचार पाकर उन वृद्ध दादा और दादीको कितना आनन्द हुआ उसका वर्णन करनेकी अपेक्षा कल्पना करना ही अधिक ठीक होगा। देवगढपर एकनाथके सम्बन्धमें पण्डितजीने जो-जो बातें सुनीं, उन्हें उनकी दादी तो पण्डितजीसे बार-बार सुनकर भी सन्तुष्ट नहीं होती थीं और बार-बार फिर उन्हीं बातोंको पण्डितजीसे कहनेके लिये कहती थीं।

जब एकनाथका यह समाचार पैठणवासियोंको मालूम हुआ तो उन्हें भी बड़ा आनन्द हुआ और वे बड़ी उत्सुकताके साथ एकनाथके आनेकी बाट जोहने लगे। वृद्ध दादा-दादीके तो निकले हुए-से प्राण ही लौट आये, यही कहना चाहिये। अब उन्हें और कुछ वर्ष जीनेकी इच्छा होने लगी। बारह वर्षके अवर्षण दुर्भिक्षके पश्चात् दैवकी अनुकूल बयार बहने लगी और आनन्दकी वर्षा होनेकी आशा दिलानेवाले शुभ समाचारोंके मेघ पैठणक्षेत्रके आकाशमें एकत्र होने लगे।

आज आनन्दका दिन उदय हुआ। पिपलेश्वरके देवालयमें एकनाथ आकर ठहरे और मध्याह्नकालमें जो कुछ मिल जाय उसीसे निर्वाह करके सन्तोषके साथ रहने लगे। योगाभ्याससे गठा हुआ उनका वह तेजःपुञ्ज शरीर, मस्तकपर सोहनेवाला वह दीर्घ जटाकलाप, वह प्रसन्न और आनन्दमय मुखमण्डल, नेत्रोंका वह ब्रह्मतेज और दर्शनमात्रसे दर्शकोंके मनमें पूज्यभाव उत्पन्न करनेवाली उनकी सहज-सरल रहन-सहन देखकर कुछ लोग जान गये कि यह कोई महात्मा हैं। एक दिन पण्डितजीने एकनाथजीको देखा, पहचान लिया और चुपचाप वृद्ध चक्रपाणिका हाथ पकड़कर वह सन्ध्याके समय उन्हें एकनाथके पास ले चले। रास्तेमें ही दादा और पोतेका सामना हो गया और पण्डितजीने एकनाथको रोका। दादाकी साध पूरी हुई। एकनाथ और चक्रपाणिकी भेंट हो गयी! चक्रपाणिने नाथको गले लगाया और प्रेमसे उन्हें चूम लिया। चक्रपाणि इस समय दुःख और आनन्दके ज्वार-भाटेमें

पड गये। पर इस समयका दु:ख भी सुखरूप ही था। एकनाथसे उन्होंने कहा, 'मेरे तात! हम बूढ़ोंको छोड़कर तुम क्यों चले गये? तुम्हारा कोमल चित्त वज्रसे भी इतना कठोर कैसे हो गया? तुम्हीं तो अन्धेकी लाठी थे। आओ, आओ, अब तुम्हें हम कहीं न जाने देंगे।' इस प्रकार आनन्दके आँसू गिराते हुए चक्रपाणिने बहुत शोक किया। एकनाथका निजबोधका आसन अभंग होनेसे मोह उनके चित्तको स्पर्श नहीं कर सका। चक्रपाणिने जनार्दन स्वामीका पत्र निकालकर उनके हाथमें दिया। गुरुके अक्षर देखते ही नाथने उस पत्रको मस्तकपर धारण किया और फिर पढा। श्रीगुरुकी आज्ञासे उसी स्थानमें उन्होंने वास किया। पत्र मिलते समय जिस स्थानमें बैठे थे उस स्थानको उन्होंने नहीं छोड़ा। तीर्थयात्रा वहीं समाप्त करके, गुरुकी आज्ञाके अनुसार, उसी जगह डेरा डाला। शीघ्र उस स्थानमें उनकी कुटी बन गयी और वहीं फिर उनका भवन भी बना। वह भवन आज भी वहाँ विद्यमान है। एकनाथ पैठणमें स्थित होकर रहने लगे। पोतेकी पुन: भेंट होनेसे जीवन-सूर्यका अस्त होनेके पूर्व दादा-दादीको परम सुख-लाभ हुआ। ये अब एकनाथका विवाह करा देनेकी चिन्तामे लगे।



नाथका गृहस्थाश्रम

चित्त मेरे ही रंगमें रँग गया, इससे घरकी आसक्ति छूट गयी। तब इस गृहस्थाश्रममें मेरी मिलकियत, मेरा सुख और मेरी सम्पत्ति यही आत्मबोध है। घर-द्वार, स्त्री-पुत्र सबके होते हुए भी उनकी आसक्ति न रखनी चाहिये। परमात्ममुक्ति-साधन-से चित्तवृत्तिको सावधान रखना चाहिये।

—एकनाथी भागवत

जनार्दन स्वामीने चक्रपाणिकी प्रार्थनाके अनुसार एकनाथ-को विवाह करके गृहस्थाश्रममें जानेकी आज्ञा दी। 'गृहस्थाश्रम सब आश्रमोंमें श्रेष्ठ है। सब भूतोंमें भगवद्भाव रखकर स्वधर्म और भूतदयाको बढ़ाना चाहिये।' गुरुकी इस आज्ञाको मानकर एकनाथ विवाह करनेपर राजी हुए। पैठणकी दक्षिण-पूर्व दिशामें विजापुर या वैजापुर नामक स्थानमें एक अच्छे सम्पन्न गृहस्थ थे, उनकी कन्या विवाहके योग्य हो गयी थी। पैठणवासी किसी मित्रसे नाथकी इच्छा मालूम होनेपर वह अपनी कन्याके साथ चक्रपाणिके पास आये। कन्या सुलक्षणा, सुरूपा और बुद्धिमती मालूम हुई। जन्मपत्री भी दोनोंकी मिल गयी। चक्रपाणि अब विवाहकी तैयारीमें लगे। विजापुरवाले सज्जनने यह जानकर कि भानुदासके पवित्र कुलके साथ सम्बन्ध हो रहा है, 'सालङ्कृत कन्यादान' करनेका निश्चय किया। दोनो ओरके बराती जुटे।

आता उसमें वह जनार्दनको ही देखते थे। सबके साथ उनका समदर्शिताका व्यवहार था। घरका सब काम-काज उद्धव ही बड़ी प्रसन्नतासे देख लिया करते थे, इससे एकनाथ महाराजको उस ओर देखनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं होती थी। घरमें क्या है, क्या लाना है यह सब उद्धव ही देख लेते थे। वह सच्चे शिष्य बनकर नाथ महाराजकी केवल दया-दृष्टि प्राप्त करनेके लिये ही उनके साथ रहते थे।

एकनाथ महाराजको सहधर्मिणी भी उन्हींके योग्य मिलीं। अल्प वयस्में ही उन्होंने घरका सब काम सँभाल लिया। जबतक वृद्ध चक्रपाणि और उनकी स्त्री विद्यमान थीं, तबतक पतिके मनमें अपनी ओरसे प्रीति उत्पन्न करनेके लिये वह सास-ससुरकी सेवामें तत्पर रहती थीं और इस तरह उन्होंने पतिको प्रसन्न कर उनकी प्रीति लाभ की। एकनाथ महाराजका विवाह होनेके कुछ वर्ष बाद उनकी वृद्धा दादीका देहान्त हुआ और इसके कुछ ही दिन बाद वृद्ध दादा भी परलोक सिधारे। इसके बाद घरका सारा भार गिरिजाबाईपर आ पड़ा। नाथके समान ही गिरिजा-बाई भी शीलवती, शान्त और दयालु थीं। महद्भाग्यसे नाथ-जैसे प्राणनाथ मिले यह सोचकर वह अपने-आपको धन्य समझती थीं। ऐसी अनुकूल, कुलवती, कुशल और सुशील पत्नी नाथको भी महत् पुण्यसे ही प्राप्त हुई। परोपकारमें तथा आबालवृद्ध सबके साथ समान प्रेमके व्यवहारमे वह नाथसे किसी प्रकार कम नहीं थीं। सदा ही दीन-दुखियोंके दु खोंके निवारणमें लगी रहती थीं और उन्हींके

यह मालूम होता है कि धर्म-प्रवर्तकोंमें इस परम भागवतोत्तमकी गणना इतनी प्रधानताके साथ क्यों की गयी ? हरि-भक्तिका पन्थ ही ऐसा है कि जिसमें श्रद्धा है वही इसका अधिकारी है । जो अन्त करणसे यह चाहता है कि जिस तरह हो भगवान् मिले वही परमार्थका अधिकारी है उसकी जाति, वर्ण, वृत्ति चाहे कुछ भी हो ।

हो कां वर्णामाजी अग्रगणी । जो विमुख हरि चरणीं ॥
त्याहुनि श्वपच श्रेष्ठ मानी । जो भगवद्भजनीं प्रेमल ॥

(नाथभागवत अध्याय ५ । ६०)

'कोई सब वर्णोंमें श्रेष्ठ हो पर हरि-चरणसे विमुख हो तो उससे वह चाण्डाल श्रेष्ठ है जो भगवद्भजनका प्रेमी है ।' अस्तु, इस प्रकार एकनाथ महाराजने जन्माष्टमीका उत्सव आरम्भ करके भागवत-धर्मका मानो झण्डा ही फहरा दिया ।

श्रीमद्भागवत सुननेमें उद्धवकी उत्कण्ठा और श्रद्धा देखकर एकनाथ महाराजने भागवत बाँचना आरम्भ किया । उनका निरूपण स्वानुभवपूर्ण और प्रेमसे भरा हुआ होनेके कारण झुण्ड-के-झुण्ड श्रोता कथा सुनने दौड़े आने लगे और कथामें प्रेमानन्दसे झूमने लगे । भक्तोंको इसका ऐसा चसका लगा कि क्या स्त्री और क्या पुरुष सभी अपना काम-धाम छोड़कर कथा सुनने जाने लगे । केशव कविने एकनाथ महाराजकी कथाका वर्णन किया —'उनकी कथा भक्ति-ज्ञान-वैराग्ययुक्त हुआ करती थी । उनकी विलक्षण रस था जिसका नित्य नया आस्वाद श्रोताओंको

अकेले वक्ताको ही करके दिखानी पड़ती है)—यह प्रहसन एकनाथ महाराजने शुरू किया। इससे सब प्रकारके खेल और कौशल उनके कीर्तनके उपाग-स्वरूप इस उत्सवमें आ गये, इस क्रमसे सब प्रकारके लोग भी आ गये और इस प्रकार सब प्रकारकी वृत्तियों, खेलों और कौशलोंपर उनकी कविताएँ बनीं। ये कविताएँ कबड्डीपर हैं, गुल्ली-डण्डेपर हैं, पुरुषोंके, स्त्रियोके और बच्चोंके सब प्रकारके खेलोंपर हैं, सॉप-बिच्छूपर भी हैं, छोटी-बडी कई चीजों और ढोंगियोंके ढगोपर भी है। इन कविताओंकी भाषा बडी सरल, बाल-बोध है, सबकी समझमें आ जाय, ऐसी है। नित्यके व्यवहारमें, नित्यकी भाषा और भावसे ही सर्वसाधारणमें हरि-भक्ति उत्पन्न करनेका उनका यह ढग देखकर उनकी उदारता धन्य मालूम होती है। किसी भी धर्मको माननेवाला मनुष्य हो, कोई भी पेशा करता हो, किसी जातिका हो, स्त्री हो या पुरुष हो, वह सबका स्वागत करते थे और सबको, जिसको जैसा अधिकार मिला उसी अधिकारके अनुसार ब्रह्मज्ञानका उपदेश करते थे*। उनकी यह उदार चित्त-वृत्ति देखनेसे

---

*स्वामी विवेकानन्दने धर्म-प्रवर्त्तकोंका लक्षण इस प्रकार बताया है—

The only true teacher is he who can convert himself as it were into a thousand persons at a moment's notice The only true teacher is he who can immediately come down to the level of the student and transfer his soul to the student's soul, and see through the student's eyes and hear through his ears and understand through his mind Such a teacher and none else can teach

यह मालूम होता है कि धर्म-प्रवर्तकोंमें इस परम भागवतोत्तमकी गणना इतनी प्रधानताके साथ क्यों की गयी ? हरि-भक्तिका पन्थ ही ऐसा है कि जिसमें श्रद्धा है वही इसका अधिकारी है। जो अन्त करणसे यह चाहता है कि जिस तरह हो भगवान् मिलें वही परमार्थका अधिकारी है उसकी जाति, वर्ण, वृत्ति चाहे कुछ भी हो।

हो कां वर्णांमाजी अग्रगणी। जो विमुख हरि चरणीं॥
त्याहुनि श्वपच श्रेष्ठ मानी। जो भगवद्भजनीं प्रेमल॥

(नाथभागवत अध्याय ५। ६०)

'कोई सब वर्णोंमें श्रेष्ठ हो पर हरि-चरणसे विमुख हो तो उससे वह चाण्डाल श्रेष्ठ है जो भगवद्भजनका प्रेमी है।' अस्तु, इस प्रकार एकनाथ महाराजने जन्माष्टमीका उत्सव आरम्भ करके भागवत-धर्मका मानो झण्डा ही फहरा दिया।

श्रीमद्भागवत सुननेमें उद्धवकी उत्कण्ठा और श्रद्धा देखकर एकनाथ महाराजने भागवत बाँचना आरम्भ किया। उनका निरूपण स्वानुभवपूर्ण और प्रेमसे भरा हुआ होनेके कारण झुण्ड-के-झुण्ड श्रोता कथा सुनने दौड़े आने लगे और कथामें प्रेमानन्दसे झूमने लगे। भक्तोंको इसका ऐसा चसका लगा कि क्या स्त्री और क्या पुरुष सभी अपना काम-धाम छोड़कर कथा सुनने जाने लगे। केशव कविने एकनाथ महाराजकी कथाका वर्णन किया है—'उनकी कथा भक्ति-ज्ञान-वैराग्ययुक्त हुआ करती थी। उनकी वाणीमें विलक्षण रस था जिसका नित्य नया आस्वाद श्रोताओंको

मिलता और प्रेमसे उनके हृदय भर जाते थे। सबके चित्त नित्य उस आनन्दको भोगते हुए उसी आनन्दमें लग गये। भक्ति-पन्थ ऐसा बढा कि घर-घर भगवान्‌के नामका घोष होने लगा।'

कई श्रोता तो ऐसे थे कि भोजन भी एकनाथ महाराजके यहाँ ही कर लेते और फिर आनन्दसे कीर्तन भी सुनते हुए तल्लीन हो जाते। महाराजके यहाँ नित्य ही नये पाहुने आया करते। पर इतने बडे प्रपञ्चका यह सारा खर्च कैसे चलेगा, इसकी उन्हें कभी कोई चिन्ता नहीं हुई। 'मैं और मेरा परिवार या संसार' यह भाव ही उनके मनमें कभी नहीं आया। सारा परिवार और ससार भगवान्‌का है यही उनकी निरहकार भावना थी। भगवान्‌के चरणोंमें ससार समर्पित करके भक्त निश्चिन्त रहते हैं और तब वह सारा प्रपञ्च भगवान्‌का ही हो जाता है।

सब दानोंमें श्रेष्ठ अन्नदान है और उससे भी श्रेष्ठ स्वस्वरूप-दान है। एकनाथ महाराज ये दोनों दान आजीवन करते रहे। और स्वय भगवान् उनके घरमें विराजते थे। इससे उन्हें कभी किसी बातकी कमी नहीं हुई और फिर उनके हरि-कीर्तनका जो इष्ट परिणाम जनतापर हो सकता था वह तो हुआ ही। पर इससे भी अधिक लोकोपकार उनके सदाचारसे हुआ। सैकड़ो व्याख्यानों और कथा-प्रवचनोंसे जो काम नहीं होता वह सत्पुरुष-के सदाचारसे होता है। सुनकर जो बात समझमे नहीं आती वह देखकर आ जाती है! क्षमा, शान्ति, भूतदया, निरहकार, नि सङ्गता, हरि-भक्ति, परोपकार और इन्द्रिय-दमनादि गुणोंसे जो

ओत-प्रोत है और जिसके नित्य-नैमित्तिक आचरणमें ये गुण सदा व्यक्त होते हैं ऐसे एक क्रियावान् पुरुषको देखकर जितने लोग सचेत होते हैं उतने व्याख्यान-कीर्तन, पुराणादि-श्रवणसे नहीं होते। एकनाथ महाराजने ग्रन्थ भी लिखे और कथा-कीर्तन भी किये, इससे समाजपर उनकी जो धाक जमी उससे सहस्रों गुण अधिक उनके आचरणसे जमी। सन्त उन्हींको कहते हैं जो केवल कहते नहीं, करके दिखाते हैं। सन्त पूर्णकाम ही होते हैं, पर बद्धोंको मुमुक्षु और मुमुक्षुओंको मुक्त करनेके लिये ही उनका जीवन होता है। ज्ञानेश्वर महाराजने (ज्ञानेश्वरी अ० १६ में) कहा है—

कां फेडित पापाताप। पोखीत तीरींचें पादप।
समुद्रा जाय आप। गंगे जैसे ॥ १९९ ॥
कां जगाचें आंध्य फेडित। श्रियेची राउळें उघडीत।
निघे जैसा भास्वत। प्रदक्षिणे ॥ २०० ॥
तैसीं बांधलीं सोडीत। बुडालीं काढीत।
सांकडी फेडीत। आर्तांचिया ॥ २०१ ॥
किं बहुना दिवसराती। पुढिलांचें सुख उन्नती।
आणीत आणीत स्वार्थी। प्रवेशिजे ॥ २०२ ॥

'गङ्गा सागरसे मिलने जाती है, पर जाती हुई जगत्‌का पाप-ताप निवारण करती और किनारेके वृक्षोंको पोसती जाती है। अथवा सूर्य भगवान् नित्यकी परिक्रमा करते हुए संसारका अन्धकार दूर करते और कमलोंको विकसित करते जाते हैं। उसी प्रकार आत्मस्वरूपको प्राप्त जो सन्त हैं वे अपने सहज

मिलता और प्रेमसे उनके हृदय भर जाते थे। सबके चित्त नित्य उस आनन्दको भोगते हुए उसी आनन्दमें लग गये। भक्ति-पन्थ ऐसा बढा कि घर-घर भगवान्‌के नामका घोष होने लगा।'

कई श्रोता तो ऐसे थे कि भोजन भी एकनाथ महाराजके यहाँ ही कर लेते और फिर आनन्दसे कीर्तन भी सुनते हुए तल्लीन हो जाते। महाराजके यहाँ नित्य ही नये पाहुने आया करते। पर इतने बड़े प्रपञ्चका यह सारा खर्च कैसे चलेगा, इसकी उन्हें कभी कोई चिन्ता नहीं हुई। 'मैं और मेरा परिवार या ससार' यह भाव ही उनके मनमें कभी नहीं आया। सारा परिवार और ससार भगवान्‌का है यही उनकी निरहकार भावना थी। भगवान्‌के चरणोंमें ससार समर्पित करके भक्त निश्चिन्त रहते हैं और तब वह सारा प्रपञ्च भगवान्‌का ही हो जाता है।

सब दानोंमें श्रेष्ठ अन्नदान है और उससे भी श्रेष्ठ स्वस्वरूप-दान है। एकनाथ महाराज ये दोनों दान आजीवन करते रहे। और स्वय भगवान् उनके घरमे विराजते थे। इससे उन्हें कभी किसी वातकी कमी नहीं हुई और फिर उनके हरि-कीर्तनका जो इष्ट परिणाम जनतापर हो सकता था वह तो हुआ ही। पर इससे भी अधिक लोकोपकार उनके सदाचारसे हुआ। सैकड़ों व्याख्यानों और कथा-प्रवचनोंसे जो काम नहीं होता वह सत्पुरुष-के सदाचारसे होता है। सुनकर जो बात समझमें नहीं आती वह देखकर आ जाती है। क्षमा, शान्ति, भूतदया, निरहकार, नि सङ्गता, हरि-भक्ति, परोपकार और इन्द्रिय-दमनादि गुणोंसे जो

ओत-प्रोत है और जिसके नित्य-नैमित्तिक आचरणमें ये गुण सदा व्यक्त होते हैं ऐसे एक क्रियावान् पुरुषको देखकर जितने लोग सचेत होते हैं उतने व्याख्यान-कीर्तन, पुराणादि-श्रवणसे नहीं होते। एकनाथ महाराजने ग्रन्थ भी लिखे और कथा-कीर्तन भी किये, इससे समाजपर उनकी जो धाक जमी उससे सहस्रों गुण अधिक उनके आचरणसे जमी। सन्त उन्हींको कहते हैं जो केवल कहते नहीं, करके दिखाते हैं। सन्त पूर्णकाम ही होते है, पर बद्धोंको मुमुक्षु और मुमुक्षुओंको मुक्त करनेके लिये ही उनका जीवन होता है। ज्ञानेश्वर महाराजने (ज्ञानेश्वरी अ० १६ में) कहा है—

कां फेडित पापाताप। पोखीत तीरींचें पादप।
समुद्रा जाय आप। गंगे जैसे ॥ १९९ ॥
कां जगाचें आंध्य फेडित। श्रियेचीं राउळें उघडीत।
निघे जैसा भास्वत। प्रदक्षिणे ॥ २०० ॥
तैसीं बांधलीं सोडीत। बुडालीं काढीत।
सांकडी फेडीत। आर्तांचिया ॥ २०१ ॥
किं बहुना दिवसराती। पुढिलांचें सुख उन्नती।
आणीत आणीत स्वार्थी। प्रवेशिजे ॥ २०२ ॥

'गङ्गा सागरसे मिलने जाती हैं, पर जाती हुई जगत्‌का पाप-ताप निवारण करती और किनारेके वृक्षोंको पोसती जाती हैं। अथवा सूर्य भगवान् नित्यकी परिक्रमा करते हुए ससारका अन्धकार दूर करते और कमलोंको विकसित करते जाते है। उसी प्रकार आत्मस्वरूपको प्राप्त जो सन्त हैं वे अपने सहज

कर्मोंसे संसारमें बँधे वन्दियोंको छुड़ाते, डूबे हुओंको उबारते, आर्त्तोंके दु.ख दूर करते रहते हैं। और यह सब वे यह समझकर नहीं करते कि हम कोई महान् उपकार कर रहे हैं, प्रत्युत उनका यह आचरण सहज होता है और उनके उस आचरणको देखकर सहस्रों मनुष्य अपने-अपने उद्धारका मार्ग ढूँढ़ने लगते हैं। सन्तोंकी जीवन-चर्या ही ससारके लिये आइनेके समान होती है। उनके सदाचरणको प्रमाण मानकर लोग उसका अनुकरण करने लगते हैं। एकनाथ महाराजका सदाचरण और निष्काम भगवद्भजन देखकर सहस्रों जीव तर गये।

एकनाथ महाराजके कीर्तनका लोगोंके चित्तपर इतना अच्छा परिणाम हुआ कि पैठणके लोग परमार्थचर्चा और नाम-स्मरणके आनन्दमें ऐसे मग्न हो गये कि सकाम व्रतादिसे वहुतोंका चित्त हट गया और इससे बहुतोंकी जीविका भी छिन गयी! सत्यके तेजके सामने झूठ फीका पड जाता है और असलके सामने नकल नहीं ठहर सकती, उसी प्रकार उस अन्तर्बाह्य एकरूप महा-भागवतके सामने पैठणके वैदिक, पण्डित, याज्ञिक और सव विद्वान् हतप्रभ हो गये और इनमेंसे वहुतेरे इनका द्वेष भी करने लगे। द्वेषसे निन्दाका नाला बहने लगा और निन्दासे अत्याचारके जहरीले कीडे पैदा हुए। एकनाथ महाराज-जैसे महात्माको अनेक प्रकारसे पीडा पहुँचानेके लिये कुछ लोगोंने कमर कसी। इनपर अनेक प्रकारके आक्षेप किये जाने लगे। लोग कहने लगे कि यह देववाणीका अपमान करके मराठी-भाषामें ग्रन्थ रचता है, कर्मठता-

को नष्ट करके नाम-स्मरणके पीछे लोगोंको पागल बना देता है। सकाम व्रतादिका उपहास करके निष्काम प्रेमको ही बढ़ाता है, इस कारण वेद-शास्त्रोंकी अपेक्षा भक्ति-मार्गका ही प्राधान्य बढ़ता जा रहा है, आत्माकी ही धुनमें सब मस्त हो रहे हैं, प्रवृत्तिका शास्त्र कोई हमसे पूछता ही नहीं है, फिर यह श्रोत्रिय ब्राह्मणोंके समान ही अन्य हीन वर्णों और अन्त्यजोंतकको भी अपनाता है इससे ब्राह्मणोंकी कुछ महिमा ही न रह गयी, ब्रह्मज्ञान भी यह सबको राह चलते बाँटा करता है जिससे मान्त्रिकों और ओझाओंको भी कोई नहीं पूछता !' इस प्रकार जहाँ-तहाँ निन्दा आरम्भ करके इन लोगोंने एकनाथ महाराजकी फजीहत करने और अन्य प्रकारसे उन्हें पीडित करनेका उद्योग आरम्भ किया ! एकनाथ महाराज किसीके चित्तको जरा भी कष्ट नहीं पहुँचाते थे, ब्राह्मणोंका यथोचित सम्मान करते थे, वेद-स्मृति-पुराणादिका पूर्ण आदर करते थे; तथापि अन्त.शुद्धि ही भगवान्को प्राप्त करनेका मुख्य साधन है, और *'अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः'* भगवान्के इस शुद्ध स्वरूपको अपने ही हृदयके अन्दर जानो और अनन्यमन होकर उसे पुकारो तो वह तुम्हारे बिलकुल पास ही है, यही उनका मुख्य उपदेश होता था। यह वास्तविक ज्ञान जिनकी जीविकामें बाधक होता था वे उनसे द्वेष करते थे। दम्भ और दाम्भिकोंपर एकनाथ महाराज निर्भय होकर प्रहार किया करते थे। झूठको कभी उन्होंने आश्रय नहीं दिया और सच बोलनेमें कभी संकोच नहीं किया। 'बाह्यवेशधारियों' को बोध दिलानेवाले उनके कुछ **'अभङ्ग'** हैं।

इन अभगोको देखनेसे मालूम होता है कि भण्डाफोड करनेमें उन्होने कितनी कुशलतासे काम लिया है। परमार्थके लिये अन्त-साधन ही मुख्य साधन है, यही वह कहा करते थे, इससे बाहरी साधनोंकी दूकान लगाकर बैठे हुए धनलोभी उनसे चिढ़ गये थे।

दाम्भिक वेशवाले पेटपरायण महात्मा सदा ही सत्यका प्रतिपादन करनेवालोका द्वेष किया करते हैं। एकनाथ स्वय ब्राह्मण थे, और सच्चे ब्राह्मणभक्त भी थे, परन्तु दुराचारी, धर्मध्वजी, पाखण्डी और नास्तिक ब्राह्मणोंका पक्ष उन्होने कभी नहीं किया। उनके दरबारमें सदाचार और हरिभक्तिका ही सर्वोपरि मान था। हरिभक्त भगीको वह नास्तिक और दुराचारी ब्राह्मणकी अपेक्षा अत्यन्त श्रेष्ठ मानते थे। उन्हे सकरता प्रिय१ नहीं थी, तथापि—

जन्म कर्म वर्णाश्रम जाती। पूर्ण भक्त हातीं न धरिती॥
चहूँ देहांची अहंकृती। स्वप्नीं ही न धरिती हरिभक्त॥

अर्थात् 'जन्म, कर्म, वर्णाश्रम, जातिको, जो पूर्ण भक्त हैं वे पकड़े नहीं रहते। चारों देहोंका अहकार त्याग देते हैं, स्वप्नमें भी हरिभक्त ऐसा अहकार नहीं धारण करते।' इस बातको वह मानते थे। ब्राह्मणको केवल इसलिये कि वह ब्राह्मण है अथवा भगीको केवल इसलिये कि वह भगी है, अपनानेवाले वह नहीं थे। देहभावको त्यागनेवाले उच्च कोटिके महात्माओकी जो समत्वदृष्टि ब्राह्मण और चाण्डालके प्रति होती है वही समत्वदृष्टि एकनाथ महाराजकी थी। उनपर जो आक्षेप और अत्याचार हुए, उनकी अनेक कथाएँ प्रसिद्ध है। एकनाथ महाराजने

स्वयं भी अपने भागवत-ग्रन्थमें अपने विषयमें लोग क्या-क्या तर्क करते हैं, इसका बडा मनोरञ्जक वर्णन किया है—

'एका जनार्दनकी यह तारीफ है कि कोई कहते हैं, वह भक्त है; कोई कहते हैं, वह जीवन्मुक्त है और कोई उसे पक्का प्रपञ्ची मानते हैं और कहते हैं कि यह एका जनार्दन न आसन जानता है, न कोई ध्यान जानता है। नियम-मुद्रा-माला कुछ भी नहीं जानता और न इसमें उपासनाका कोई लक्षण है। भला, इसने किस मन्त्रकी दीक्षा ली है? और शिष्योंको क्या उपदेश करता है? किसीको मन्त्र-यन्त्र कुछ नहीं देता। भावुक लोग भावके पीछे इसके फेरमें पड़ गये हैं। केवल हरिनामका घोष करा-कर इसने लोगोंको चक्करमें डाल रखा है। ऐसे नाना प्रकारके विकल्प स्वय जनार्दन ही तो उत्पन्न किया करते हैं।'

एकनाथ महाराजकी सहिष्णुता, क्षमाशीलता अथवा समता अलौकिक कोटिकी थी, इससे निन्दक और अत्याचारी उनका कुछ भी बिगाड़ न सके। अपकारियोंका भी उपकार करनेवाले महात्माओंका भला कोई क्या अपकार कर सकता है? अत्या-चारियों और निन्दकोंसे भी एकनाथ महाराजने कभी घृणा नहीं की, उनके वाग्बाण शान्तिके साथ सह लिये और उनका भी पारलौकिक कल्याण हो, यही इच्छा की। एकनाथ महाराजने समय-समयपर जो प्रायश्चित्त कराये गये उन्हें उन्होंने बड़ी शान्तिके साथ किया। निन्दकोंकी कभी उन्होंने निन्दा नहीं की, वरन् उन्हें सम्मानित कर उनका आत्यन्तिक क्षेम-साधन करनेमें ही [illegible]

जगाते हैं उन्हें वे अपने मित्र, हितकर्ता और गुरु कहकर अपनाते हैं। एकनाथ महाराजने भावार्थ-रामायणमे कहा है—'मेरी कथाकी जो निन्दा करते हैं और जो स्तुति करते हैं वे दोनों ही मेरी माताके समान हैं। निन्दक भी मेरे लिये दयालु और प्यारी माता ही है। जैसे माताके हाथ बाहरी मलको बाहर-से ही धो डालते हैं वैसे ही कलिका जो बाह्य मल है उसे निन्दक अपने मुँहसे निर्मल कर देता है। इसलिये वास्तवमें निन्दक परमार्थमें सहायक सखा है। उस निन्दककी जो निन्दा करता है वह सर्वथा दोषी होता है। निन्दा क्या है, परमामृत है, निर्द्वन्द्व सुखस्वार्थ है। सच पूछिये तो निन्दक अपना स्वार्थ नहीं देखता, परोपकारमे ही अति समर्थ होता है। जहाँ निन्दा सुखसे समाती है उसके चरणोंपर मैं मस्तक नवाता हूँ। जो निर्द्वन्द्व होकर निन्दा सह लेता है उसकी माता धन्य है।'

कैसी विलक्षण उदारता है? एकनाथ महाराज जबतक जीते थे तबतक उनके पीछे निन्दक और दुष्ट लोग लगे थे। गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेके समयसे गोदावरी-तीरपर अपनी देह छोड़नेके समयतक जैसे उन्होंने अपना सारा जीवन परोपकार-में बिताया, वैसे ही उनके निन्दकोने भी अन्ततक उनका पीछा करनेमे कोई बात नहीं उठा रखी! पर एकनाथ महाराजकी समदृष्टिमें निन्दक भी गुरुरूप ही थे।

कर्णाटकमें एक बड़े महाजनने विट्ठल और रुक्मिणीकी सुन्दर मूर्तियाँ तैयार करायीं और वह अब इनकी स्थापना कराया

चाहता था। तीन दिन लगातार स्वप्नमें उसे यह आदेश हुआ कि, 'इन मूर्त्तियोंको पैठणमें श्रीएकनाथ नामक सत्पुरुषके पास पहुँचा दो।' इसे भगवान्‌का आदेश मानकर वह साहूकार उन मूर्त्तियोंको बड़े ठाट-बाटके साथ पैठणमें ले आया। नगरमें उसके पहुँचते ही यजमान-वृत्तिवाले ब्राह्मण अपनी-अपनी बहियाँ लेकर उसके पास पहुँचे। पर उसे एकनाथ महाराजके पास ही जाना था और किसीसे कुछ मतलब नहीं था, इसलिये वह सीधे एकनाथ महाराजके घरपर ही पहुँचा। महाराज उसके आगमन-का हेतु समझ गये। यथोचित आवभगत होनेके पश्चात् उसने अपना अभिप्राय निवेदन किया। एकनाथ महाराजने साइत देखी और उस दिन बड़े समारोहके साथ विट्ठल-रुक्मिणीका विधिपूर्वक विवाह कराके मूर्तियोंकी प्राण-प्रतिष्ठा की और ब्राह्मण-भोजन, दान-धर्मादि बडे प्रेमके साथ करके अपनी विट्ठल-भक्ति व्यक्त की। वह साहूकार कुछ दिन वहाँ रहा, उसने एकनाथ महाराजके कीर्तन श्रवण किये और परम प्रसन्न हुआ। उसने एकनाथ महा-राजसे दीक्षा ली और महाराजके गुणोंकी परम आनन्ददायक स्मृतिके साथ घर लौट गया। इस प्रकार स्थापित विट्ठल-मूर्तिकी पूजा आदि एकनाथ महाराज बड़े भक्तिभावसे करते थे, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं। मन्दिर बनवानेका सब खर्च उसी महाजनने दिया था।

एकनाथ महाराजकी कर्मनिष्ठा उनकी ब्रह्मनिष्ठाके समान ही थी। वह ऐसे कठोर-कर्मठ भी नहीं थे कि कर्मको ही

उनके और भी बहुत-से शिष्य थे। गुरु जनार्दन स्वामी असामान्य पुरुष थे। एकनाथ-जैसे शिष्यके कारण उनकी कीर्ति दिग्-दिगन्तमें फैल गयी। अकर्तात्मबोध होनेसे गृहस्थाश्रममें भी भगवत्-प्राप्ति हो सकती है यह उन्होंने अपने जीवनसे दिखा दिया। जनार्दन स्वामी यद्यपि देवगढ़पर ही रहते थे तथापि महाप्रस्थानके लिये वह वौम्य ग्राममें आ गये थे और वहीं चैत्र वदी ६ को उन्होंने देहविसर्जन किया। यह ग्राम नगर जिलेमें जामखेड और शेवगाँवकी सीमापर है। वहाँ प्रतिवर्ष इस दिन उनकी तिथि मनायी जाती है।

जनार्दन स्वामीके देहपातका समाचार जब एकनाथ महाराजको मालूम हुआ तब पूर्ण बोध होनेसे उनकी ब्राह्मी-स्थिति भंग नहीं हुई। 'नाथभागवत' उन्होंने एक स्थानमें कहा है, '*मरता गुरु और रोता चेला, दोनोंको क्या ज्ञान मिला?*' ये दोनों ऐसे गुरु और चेला नहीं थे। गुरु मरे नहीं और चेला रोये भी नहीं! एकनाथ महाराजने उद्धवसे सब तैयारी करायी और षष्ठीका उत्सव बड़े ठाटसे किया। एकनाथ-चरित्रमें षष्ठी-की महिमा बहुत बड़ी है। चैत्र वदी ६ को पाँच घटनाएँ बड़े महत्त्वकी हुई हैं। पहले ही महोत्सवके अवसरपर एकनाथ महाराजने उद्धवसे कहा—'चैत्र वदी षष्ठी श्रीजनार्दनका जन्म-दिवस है। उसी दिन उन्हें श्रीदत्तात्रेय-दर्शनका लाभ भी प्राप्त हुआ था। मुझे भी श्रीजनार्दनके दर्शन इसी षष्ठीके दिन हुए जिससे सारी सृष्टिको अद्वैतरूपसे देखनेकी शक्ति

दृष्टि प्राप्त हुई। इसी दिन श्रीजनार्दन स्वच्छन्द गतिसे देहाकृति-को त्यागकर सुख-स्थितिमें निज धामको चले गये। इन चार पर्वोंको जानकर इस दिन बडे उत्साह और समारोहके साथ उत्सव करना चाहिये। पाँचवाँ पर्व भी इसी दिन है, यह तुम आगे अपनी आँखो देखोगे। इस प्रकार भावार्थी भक्तोंके लिये यह षष्ठी पञ्चपर्वश्रेणी है। (केशवकृत नाथ-चरित्र)

यही बात महीपतिने भक्त-लीलामृतमे भी कही है, इससे यह माल्रम हो जाता है कि, १—जनार्दन स्वामीका जन्म, २—जनार्दन स्वामीको दत्तात्रेय भगवान्‌का साक्षात्कार, ३—जनार्दन स्वामीका श्रीएकनाथपर अनुग्रह, ४—जनार्दन स्वामीका देह-त्याग और ५—आगे होनेवाला एकनाथ महाराजका देह-विसर्जन ये पाँचों घटनाएँ चैत्र वदी ६ को ही हुई और इस कारण यह 'पञ्च-पर्वश्रेणी' भक्तोंमें बहुत ही विख्यात हुई। पैठणमें षष्ठीका जो उत्सव होता है वह एकनाथ महाराजके प्रयाणके पश्चात् उनकी पुण्यतिथिके तौरपर आरम्भ हुआ होगा, ऐसा बहुतोंका खयाल हो सकता है, पर बात ऐसी नहीं है; प्रत्युत एकनाथ महाराजने ही अपने गुरु जनार्दन स्वामीकी पुण्यतिथिके तौरपर आरम्भ किया और एकनाथ अपने गुरुके स्वरूपमें समरस होकर मिल गये, मानो इसी बातको दिखानेके लिये, गुरुकी पुण्यतिथिके दिन ही एकनाथ महाराजने अपना शरीर-विसर्जन किया। पैठण-की षष्ठी इन पाँचों पुण्य-प्रसङ्गोंकी स्मृति-तिथि होनेसे उस दिन वहाँ वड़ा भारी मेला लगता है। अस्तु। जनार्दन स्वामीके देह-

त्यागके पहले ही वर्ष एकनाथ महाराजने महोत्सव करके कीर्तन, भजन और अन्नदानके द्वारा सहस्रों जीवोंको सन्तुष्ट किया; पर इससे एकनाथ महाराजपर बनियेका ७००) कर्जा हो गया ! बनियेने बड़ा तकाजा किया, तब भगवान्‌ने उद्धवके रूपमें स्वयं पहुँचकर सम्पूर्ण ऋण शोध कर दिया ।

एकनाथ महाराजकी गुरुभक्ति अपूर्व थी । आजकल जहाँ-तहाँ गुरु और चेला मारे-मारे फिरते नज़र आते हैं, पर नाथ-जैसे विरक्त शिष्य और जनार्दन स्वामी-जैसे विचारवान् गुरुका संयोग अति दुर्लभ है । एकनाथजीकी श्रद्धा-शक्ति और धी-शक्ति प्रचण्ड तो थी ही, परन्तु जनार्दन स्वामी-जैसे दत्तात्रेयस्वरूप सद्‌गुरुकी प्राप्ति हो, इसके लिये उनका दैव-बल इससे भी महान् रहा होगा । जैसे किसी मनुष्यको तीव्र क्षुधा लगी हो और उसी क्षण उसके सामने कोई अत्यन्त स्वादिष्ट षड्‌रसयुक्त भोजन परोस दे, वैसी ही यह बात हुई । पूर्वाभ्यासबलसे निष्पाप हुए इस शिष्यको जनार्दन स्वामीने लोहचुम्बकके समान अपनी ओर खींच लिया और स्वामीकी इस दयालुताको इस शिष्योत्तमने कृतकृत्य किया । स्वामीपर नाथजीकी देवतुल्य श्रद्धा थी । गुरु और ईश्वर भिन्न नहीं हैं, यही नहीं, बल्कि ईश्वर प्राप्त करानेवाला गुरु ईश्वरसे भी श्रेष्ठ है, यह स्वयं उन्होंने ही अपने भागवत ग्रन्थमें कहा है । उपासनाके लिये उपासकको सगुण भगवान्‌की कोई-न-कोई मूर्ति सामने रखनी पड़ती है । अखण्ड ध्यान-धारणाके द्वारा उस मूर्तिमें बोलते-चालते भगवान् जगानेके लिये और सगुण साक्षात्कारके लिये

प्रचण्ड एकनिष्ठताकी आवश्यकता होती है। भक्त जिस रूपका ध्यान करते हैं उसी रूपमें भगवान्‌को भक्तके लिये प्रकट होना पड़ता है। परन्तु इतना भी कष्ट न करके सामने जो सद्गुरु साकार और सगुणरूपमें प्रत्यक्ष हैं उन्हींको परमात्मभावसे पूजना और यह नित्य ध्यान करना कि वही सद्गुरु अपने सहित विश्वके अन्दर और बाहर सर्वत्र व्याप रहे हैं, इसीका नाम गुरुभक्ति है। नाथकी भावना महान् थी और गुरु समर्थ थे। शिष्य शुद्ध हो, गुरु समर्थ हो और शिष्यकी भावना दृढ़ हो, इस त्रिवेणी-सगममें ही निर्मल गुरुभक्तिका शुद्ध स्वरूप दिखायी देता है। गुरु और भगवान्‌में भेद नहीं है। सगुण भगवान् और निर्गुण भगवान्‌में भेद नहीं है, भगवान् और विश्वमें भेद नहीं है तथा भगवान् और हममें भेद नहीं है। ऐसी अभेद-भक्तिका मर्म एकनाथ महाराजने गुरुसेवामें ही जाना। भागवत-धर्ममे अद्वैत और भक्तिका बड़ा ही सुन्दर मेल हुआ है। द्वैत-भक्तिमें कठिनता है और खण्डितता भी है, परन्तु अद्वैत-भक्ति—अभेद-भक्ति अनायास और अखण्ड होती है। ये बातें गुरुगम्य मार्गसे माल्रम हो सकती हैं। ज्ञानेश्वर महाराजने कहा है, 'अद्वैतमें भक्ति होती है यह बात अनुभव करनेकी है, बोलनेकी नहीं।' अभेद गुरुभक्तिका आनन्द उद्धव और अर्जुनके समान आधुनिक कालमें नाथ और ज्ञानेश्वर-जैसे महाभागोंने ही लाभ किया। इनके चरित्रों और ग्रन्थोंमें जो जादू है वह इसी बातमें है। गुरुसेवासे विषयवासना निर्मूल होती है, चित्त चिद्रूप होता है, विश्वाभास हटकर देहातीत देव ही पूर्ण कलासे प्रकट होते हैं, काया ब्रह्मरूप हो जाती है, एकत्वका उदय

होता है, द्वैत रह नहीं जाता और सर्वत्र स्वस्वरूपाविर्भाव होता है और उसे भी देखनेवाला कोई नहीं रह जाता। नाथने गुरु-सेवामें अनुभव प्राप्त किया, इसका अभिप्राय यह कि वह स्वयं ही अनुभवरूप हो गये। जिन्हें गुरु-पद-नख-कान्तिच्छटामें स्वानुभवका अनर्घ्य रत्न मिला, वे अपने ग्रन्थोंमें, अभंगोंमें और आचरणोंमें गुरुपदके सिवाय और किसको बखानें? एकनाथ महाराजने अपने ग्रन्थोंमें गुरुके विषयमें शतशः धन्योद्गार प्रकट किये हैं।

(१) ध्यानमें गुरुका ध्यान करनेसे काया ब्रह्मभूत हो जाती है।

(२) धन्य हैं श्रीजनार्दन जिन्होने मेरा ऐसा कल्याण किया जो मुझे देहातीत भगवान् दे दिया।

(३) धन्य हैं सद्गुरु जिन्होंने ब्रह्म-भुवन दिखा दिया।

(४) ससाररूपी विषैला अजगर लिपट गया, तब भगवान् जनार्दन ही धन्वन्तरि मिले।

(५) नन्हा एका (एकनाथ) जनार्दनका लाडला है और बडा दुष्ट है और जनार्दन उसे प्रेमका दूध ही पान कराते रहते हैं।

इत्यादि अनेक प्रकारसे गुरु-प्रेमके उद्गार प्रकट किये है। श्रीजनार्दन स्वामीपर एकनाथकी जो अपार भक्ति थी उसका किञ्चित् आभास श्रीरामकृष्ण परमहसके विषयमें स्वामी विवेकानन्द-

थे, इस बीच एक ब्राह्मण पथिक वहाँ पहुँचा। पै
विद्वान् लोगोंका स्थान होनेसे वह ब्राह्मण वहाँ इस आ
कि लड़केके उपनयनके लिये यहाँसे सौ-दो सौ रुपए
दुर्भाग्यसे वह सबसे पहले इस चाण्डाल-चबूतरे
उसे इन्हीं लोगोंके दर्शन हुए। ब्राह्मण भी कुछ
आदमी था। इन गुण्डोंने उससे कहा—'यहाँ
बड़े भारी महात्मा हैं। बड़े ही शान्त हैं
आता ही नहीं। तुम यदि कोई ऐसा का
दो तो तुम्हें हम दो सौ रुपया देंगे
महाराजकी शान्ति भग करनेका निश्चय
मनोरञ्जनकी यह नयी सामग्री मिली
चिढ़ानेका उपाय सोचता-सोचता
महाराजके घरपर पहुँचा। महारा
ब्राह्मण घरमें घुसकर बिना हाथ
उतारे, सीधे ठाकुरघरमें पहुँचा
कुछ दूर नहीं, उनके पास
बैठ गया। वह समझता थ
रह ही नहीं सकता।
इससे क्षुब्ध हो जायँगे
कहा कि, 'आपके द
बहुत लोग आते हैं
ही घरमें पैर र
हुई, यह सचमु

का पहला वार खाली गया। उसने समझा मामला जरा टेढा है। पर दो सौ रुपयेका लोभ था। उसने फिर एक वार प्रयत्न करनेका निश्चय किया। एकनाथ महाराज स्नान-सन्ध्या आदिसे निवृत्त हो चुके थे, मध्याह्न-भोजनका समय था। भोजनके लिये उस ब्राह्मण-का आसन महाराजके आसनके समीप ही लगाया गया था। पत्तलें परोसी गयीं, घी परोसनेके लिये गिरिजाबाई आयीं और ब्राह्मणके सामने दोनेमें घी डालनेके लिये ज्यों ही वह झुकीं त्यों ही ब्राह्मण लपक-कर उनकी पीठपर चढ बैठा। तब महाराज गिरिजाबाईसे कहते हैं—'हाँ, सँभलना, ब्राह्मण कहीं नीचे न गिर पडे।' गिरिजाबाई भी एकनाथ महाराजकी ही धर्मपत्नी थीं। उन्होंने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—'कोई हर्ज नहीं, हरिपण्डितको (पुत्रको) पीठपर लादे काम करते रहनेका तो मुझे अभ्यास है। मै भला अपने इस दूसरे बच्चेको नीचे कैसे गिरने दूँगी।' यह सब देखकर ब्राह्मणके होश उड गये, वह नीचे लुढककर एकनाथ महाराजके चरणोंपर गिर पडा। महाराजने उसे उठाया। ब्राह्मणने सब हाल कह सुनाया और इस बातपर दुःख भी प्रकट किया कि मेरे दो सौ रुपये गये। तब एकनाथ महाराजने उससे कहा कि 'यदि यह बात थी तो मुझसे पहले ही कह देते। तुम्हे इनाम मिलनेवाला था यह मुझे मालूम होता तो मैं जरूर तुम्हारे ऊपर क्रोध करता।'

३—श्राद्धान्न और महार

एकनाथ महाराजके पिताका श्राद्ध था। रसोई तैयार हो गयी थी, आमन्त्रित ब्राह्मणोंकी प्रतीक्षामें नाथ दरवाजेपर खड़े थे।

इसी समय चार-पाँच महार उधरसे निकले और दरवाजेपरसे जाने लगे। घरमें जो रसोई तैयार हुई थी उसकी गन्ध पाकर ये लोग आपसमें कहने लगे—'वाह! कैसी अच्छी गन्ध है, भूख न हो तो लग जाय? कैसे-कैसे पक्वान्न बने होंगे! पर हम लोगोंको भला ये कहाँसे नसीब हों? यह तो ब्राह्मणोंका नसीब है जो रोज नये-नये पक्वान्न उड़ाते हैं। हम अभागोंको तो इसकी गन्ध भी दुर्लभ है!' इन लोगोंके ये शब्द सुनकर महाराजको दया आ गयी। यह इस बातको माननेवाले थे कि जितने शरीर हैं, सब हरि-मन्दिर हैं। उन्होंने चट उन महारोंको बुलाया और गिरिजाबाईसे कहा कि श्राद्धीय अन्न सब इन्हे खिला दो। नाथकी सहधर्मचारिणी गिरिजा-बाईको पति-आज्ञाका पालन करते कितनी देर लगती? बल्कि एक पग और आगे रखकर उन्होंने कहा—'अन्न तो बहुत है इसलिये इनके बाल-बच्चों और स्त्रियोंको भी बुलवाइये, सबको परोसकर खिलाया जाय। जनार्दन तो सर्वत्र हैं, सब प्राणियोंमें हैं, इसलिये आज इन्हीं अतिशूद्रोंको खिलाकर तृप्त किया जाय।' उन सबको बुलाया गया, रास्तेपर पत्तले रक्खी गयीं, ब्राह्मणोंके लिये जो चन्दन, अक्षत, पुष्प आदि जुटाकर रक्खे गये थे वे इन्हें ही अर्पण किये गये और सब पक्वान्न बाहर लाकर शूद्रोंद्वारा ही इन्हे परोसवाये गये। पश्चात् एकनाथ महाराजने *'जनीं जनार्दन आहे निश्चित'* (जनमें स्वयं जनार्दन हैं इसमें कोई सन्देह नहीं) कहकर सकल्प छोड़ा, बाल-बच्चोंसहित वे अन्त्यज भोजन करके अति तृप्त हुए। जिसकी गन्ध भी दुर्लभ थी वही भोजन इन्हें, इनकी स्त्रियों और बच्चोंको भी यथेष्ट भरपेट प्राप्त हुआ। उस भोजनसे तथा नाथ-गिरिजाबाईके

हार्दिक प्रेमभरे शब्दोंको सुनकर अन्त्यजोंके अन्तरात्मा अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्हें पान देकर विदा करनेके बाद गिरिजाबाईने घर-ऑगन सब धोकर स्वच्छ किया, बर्तन मल लिये और सब सामग्री फिर जुटाकर रसोई बनवायी, पर आमन्त्रित ब्राह्मणोंको जब यह सब किस्सा मालूम हुआ तब उन्होंने यह निश्चय किया कि 'हमें आमन्त्रित कर जिसने अनामिकोंको भोजन कराया उस भ्रष्टके यहाँ हम लोग अन्न-जल कदापि ग्रहण नहीं करेंगे।' कई ब्राह्मण तो एकनाथ महाराजके घरके ऑगनमें पहुँचकर अनाप-शनाप बकने भी लगे। कहने लगे 'तुमने ब्राह्मणाचारका लोप किया और वर्णसकर आरम्भ किया है। तुमने जो हमसे पहले अन्त्यजोंको भोजन करा दिया तो क्या तुम्हारे बाप-दादा अन्त्यज थे? कहाँ भानुदास और कहाँ उनके कुलमें आग लगानेके लिये उत्पन्न हुआ यह कुलागार?" इत्यादि। नाथ उनके सामने आकर खड़े हुए, बड़ी गम्भीर शान्तिके साथ हाथ जोडकर उन्होने विनय की, 'पहली रसोई बनी थी तो आपलोगोंके लिये ही, पर उसकी गन्ध अन्त्यजों-की नाकोंतक पहुँची। ऐसा उच्छिष्ट अन्न आपलोगोंको कैसे परोसा जाता? इसलिये वह अन्न तो उन्हीं लोगोंको परोस दिया गया और आपलोगोंके लिये फिरसे सब सामग्री जुटाकर भोजन तैयार किया गया है। इसलिये आपलोग क्षमाकर इसे ग्रहण करें।' पर उन ब्राह्मणोंको यह बात नहीं जँची और वे उन्हें कोसते हुए अपने-अपने घर चले गये। नाथ बड़े चिन्तित हुए। उनके यहाँ श्रीखण्डिया रहता ही था। उसने उन्हें सुझाया, 'आप कोई चिन्ता न करें, पत्तल परोसें. आपके पितर ही स्वय आकर भोजन

रही थी, उसी समय गङ्गा-स्नान करके एकनाथ महाराज उसी रास्तेसे लौट रहे थे। ऊपरसे उसने महाराजको देखा और दरवाजेपर आकर वह बड़े विनम्रभावसे बोली, 'क्या महाराजके चरण इस घरको पवित्र करेंगे?' नाथ महाराजने कहा, 'हाँ, चल सकता हूँ।' यह कहकर वह उसके पीछे-पीछे ऊपर गये। उद्धव भी साथ ही थे। उन्हें यह अच्छा नहीं लगा और यह सोचकर कि दुष्टोंको निन्दा करनेका यह अच्छा अवसर दिया, वह बहुत दुखी हुए। उद्धव भी नाथके पीछे ऊपर गये। वहाँ एक चौकी रखी थी जिसके चारों ओर चौक पूरा गया था। इस चौकीपर उसने महाराजको बैठाया और स्वयं कमरेके द्वारपर अष्टभाव-रोमाञ्चित होकर खड़ी रही। उसके मुँहसे शब्द न निकले, महाराज भी मौन थे। आधी घड़ी सन्नाटा छाया रहा, किसीके मुँहसे कोई शब्द नहीं निकला। 'कहाँ यह महात्मा और कहाँ मैं महापापिन! फिर भी विनती करते ही यह यहाँ आ गये, यह इनकी कितनी बड़ी दया है।' यह सोचकर उसका कण्ठ रुँध गया। सूर्यके उदयके साथ ही सारा अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी तरह नाथके दर्शनमात्रसे उसकी हृदयगत सारी पाप-वासनाएँ नष्ट हो गयीं। इसे सच्चा अनुताप हुआ है और इसके हृदयमें सच्चा भगवत्प्रेम जाग उठा है। यह देखकर महाराजके चित्तमें दया आ गयी और उन्होंने उसे धैर्य दिलाया। उसके नेत्रोंसे अखण्ड अश्रुधारा बह रही थी और इसके साथ सारा पाप निकला जा रहा था। बीजको शुद्ध देखकर महाराजने 'रामकृष्णहरी' मन्त्रका उपदेश कर उसे सत्कर्मका क्रम बताया। तदनुसार अपनी जीवन-

चर्या बनाकर वह दस वर्षमें इतनी विमल हो गयी कि मृत्युकालमें श्रीकृष्णस्वरूपका ध्यान और 'कृष्ण कृष्ण जय कृष्ण कृष्ण' मन्त्र-का घोष करते हुए उसने बड़ी शान्तिसे देह-त्याग किया ।

१०—चोरोंका सत्कार

एकनाथ महाराजके यहाँ एक दिन रातको हरिकीर्तन हो रहा था, जब तीन चोर श्रोताओंकी भीड़में घुसे और इस विचारसे कि कीर्तन समाप्त होनेपर सब लोग अपने-अपने घर चले जायँगे और घरमें सब लोग सो जायँगे तब अपना काम बनावेंगे, ये लोग मौका देखते हुए एक जगह छिपे बैठे थे । कीर्तन समाप्त हुआ और सब लोग अपने-अपने घर चले गये । दो बजेके लगभग चोरोंने अपना काम आरम्भ किया । कपड़ा-लत्ता और कुछ अच्छे बर्तन जो हाथ लगे इन्होंने पिछले दरवाजेके पास ला रखे, दरवाजा खोलकर बाहर निकलनेको तैयार हुए, पर इस लोभसे कि और जो कुछ मिले ले लें, दबे पाँव घरमें इधर-उधर ढूँढ़ने लगे ; ढूँढ़ते-ढूँढ़ते देवगृहके पास पहुँचे, वहासे देखा, अन्दर एक दीपक टिमटिमा रहा है और एकनाथ महाराज आसनपर बैठे समाधिके आनन्दमें मग्न हैं । यह दृश्य एक बार उन्होंने देखा और उनकी दृष्टि नष्ट हो गयी, फिर उन्हें कुछ दिखायी नहीं दिया । कुछ सूझता ही नहीं था, अगला-पिछला कोई दरवाजा ही नहीं मिलता था । आँखमिचौनी खेलते-खेलते वे उन बर्तनोंपर गिरे, और नाथ देवगृहमेंसे बाहर निकले । चोरोंने महाराजको देखा था और यह समझ लिया था कि इसी महात्माके प्रभावसे हम लोगोंकी आँखें अन्धी हो गयी हैं ।

कहाँ उसी समय रनियाके यहाँ भोजन भी कर रहे हैं। यह चमत्कार जब उन ब्राह्मणोंने देखा तब उन्हे बड़ा ही आश्चर्य हुआ और उनके लिये यह समझना कठिन हो गया कि उन दोनोंमेंसे सच्चे एकनाथ कौन हैं ? तब उन लोगोंकी यही धारणा हुई कि रनियाका सद्भाव जानकर भक्तवत्सल भगवान् पाण्डुरगने ही एकनाथके भेषमें रनियाके घर जाकर भोजन किया होगा।

१२–ब्राह्मण और पारस

पैठणमें एक ब्राह्मणके पास पारस-पत्थर था। इस पत्थरको वह अपने प्राणोंसे भी अधिक प्यार करता था। एक बार उसे यात्राके निमित्त कहीं दूर जाना था। अब यह पारस कहाँ रखा जाय ? एकनाथ पूर्ण भगवद्भक्त हैं यह जानकर ब्राह्मणने पारस उन्हींके पास रखा। एकनाथ महाराजने उसे देवताओंके सिंहासनके नीचे रख दिया। दूसरे दिन जब उद्धव देवताओंका निर्माल्य उठाने लगे तब उसके साथ पारस भी आ गया। निर्माल्यके साथ पारस भी गंगाजीमें गया। डेढ़ वर्ष पश्चात् वह ब्राह्मण लौटा और अपना पारस माँगने लगा। नाथको अबतक कभी उसका स्मरण भी नहीं हुआ था। उन्होंने उद्धवसे कहा कि देखो, सिहासनके नीचे कहीं होगा, उसे उठा लाओ। पर वह अब वहाँ काहेको मिलता ? उद्धवने कहा कि निर्माल्यके साथ उसे भी गंगा-प्रवाह हो गया होगा। ब्राह्मणको एकनाथ महाराजपर सन्देह हुआ। सोचा, दालमें कुछ काला है। वह और क्या सोचता ? वह पारसको जितना मूल्यवान् समझता था, उतना ही मूल्यवान् उसे एकनाथ महाराज

भी समझते होंगे, इससे अधिक वह और क्या समझ सकता था ? हर कोई हर किसीको अपनी ही कसौटीपर कसा करता है। वह बेचारा यह क्या जाने कि 'भगवान्‌के चरणोंमें आधे क्षणकी स्थिति भी इतने अनुपम आनन्दकी होती है कि उसके सामने भक्त लोग त्रिभुवन-विभव-सम्पत्तिको भी तृणप्राय मानते हैं।' एकनाथ महाराज उस ब्राह्मणको गङ्गा-किनारे ले गये, जलमें उतरकर गोता लगाया और दोनों हाथ भरकर पत्थर उठा लाये, हाथ ऊपर करके बोले, 'इनमें जो तुम्हारा पारस हो उसे निकाल लो।' ब्राह्मणने अपनी जेबसे पारसकी परीक्षाके लिये लोहखण्ड निकाला। देखा, सभी पत्थर पारस ही तो हैं। एकनाथ महाराजने एक पत्थर उसे दिया और बाकी गङ्गाजीमें डाल दिये। जिस महात्माके हाथके स्पर्शसे जीव ब्रह्म हो जाता है वह क्या सोना-मोतीसे ललचा सकता है ? नालेके लिये वर्षाका भले ही बड़ा महत्त्व हो पर इससे समुद्रको क्या ?

१३—अन्त्यज बालक और कोढ़ी ब्राह्मण

एक दिन एकनाथ महाराज मध्याह्न-सन्ध्याके लिये गंगाजी जा रहे थे। रास्तेमें एक महारका बच्चा अपनी माके पीछे दौड़ता जा रहा था। मा पानी भरने जा रही थी, जल्दीमें कुछ आगे बढ़ गयी और बच्चा पीछे कहीं लड़खड़ाकर गिर पड़ा। बालूका वह मैदान सूर्यकी प्रखर किरणोंसे भट्ठी हो रहा था। बच्चेके मुँहसे लार और नाकसे सींडे निकल रही थीं। बच्चा तेजीसे दौड़ नहीं सकता था और माको आगे जाते देख उसका मन पीछे

लौटनेको भी न होता था। इस हालतमें पडे, धूपसे हैरान उस बच्चेको देखकर नाथका अन्त करण विकल हो उठा। उन्होंने चट उस बच्चेको गोदमें उठा लिया, उसका नाक-मुँह साफ किया और उसे अपनी धोती ओढाकर धूपसे बचाते हुए महारोंकी बस्तीमें ले आये। वहाँ पहुँचते ही बच्चेने अपना घर पहचान लिया। घरमेसे उसका बाप दौड़ता हुआ बाहर आया, इतनेमें मा भी गगरी लिये आ पहुँची। महाराजने बच्चेको उसके मा-बापके हवाले किया और 'बच्चोंको ऐसे छोड न देना चाहिये, उनको हर तरहसे पालना-पोसना चाहिये, इसमें ला-परवाही करना ठीक नहीं' इत्यादि उपदेश करके गङ्गातटपर चले गये। स्नान-सन्ध्यादि करके महाराज घर गये और नित्य-कर्ममें लगे। इस घटनाके कुछ दिन बाद त्र्यम्बकेश्वरका एक वृद्ध ब्राह्मण पैठणमें आया। इसे कुष्ठरोग हो गया था और उससे यह बहुत ही पीड़ित था। पैठणमें आकर एकनाथका घर पूछता हुआ वह सीधे एकनाथ महाराजके ही घर पहुँचा। मध्याह्नका समय था। महाराज काकबलि डालने दरवाजेके बाहर आये तो यह दुखी ब्राह्मण उनके पास गया और अपना हाल बताने लगा। अपना नाम-ठिकाना सब बताकर उसने कहा, 'यह कुष्ठ जाय इसके लिये मैंने त्र्यम्बकेश्वरमें अनुष्ठान किया। आठ दिन हुए, भगवान् शङ्करने स्वप्नमें दर्शन देकर मुझसे कहा कि जाओ तुम पैठणमें जाकर एकनाथसे मिलो और व्याकुल होकर उसने जो महारके एक बच्चेके प्राण बचाये हैं उसकी उसे याद दिलाओ। इस उपकारका पुण्य यदि वह तुम्हारे हाथपर संकल्प कर दे तो

तुम रोगमुक्त हो जाओगे।' यह कहकर वह ब्राह्मण रोने लगा और नाथके चरणोंपर लोट गया। नाथ महाराजने त्र्यम्बकेश्वरके ब्राह्मणकी सब कथा सुनी और कहा, 'मेरे न कोई पाप है न कोई पुण्य ही। मैंने क्या पुण्य किया यह भगवान् त्र्यम्बकेश्वर ही जानें! ऐसा कोई भी पुण्य मैंने जन्मसे लेकर आजतक किया हो, तो मैं उसका तुम्हारे हाथपर संकल्प करता हूँ।' यह कहकर एकनाथ महाराजने जलपात्र हाथमें लिया और संकल्प करने-हीवाले थे, इतनेमें उस ब्राह्मणने रोका और कहा कि 'नहीं, आपका सब पुण्य मुझे नहीं चाहिये, केवल उतना ही चाहिये जितनेके लिये त्र्यम्बकेश्वर महादेवकी आज्ञा हुई है। ब्राह्मणकी इस इच्छाके अनुसार महाराजने वैसा ही संकल्प किया और जल उसके हाथपर छोड़ा। उसी क्षण उस ब्राह्मणका रोग नष्ट हो गया और उसकी काया निर्मल हो गयी। दस-पाँच दिन वह ब्राह्मण एकनाथ महाराजके यहाँ रहा, उनके अलौकिक गुणोंको देख-देखकर उसकी प्रसन्नता दिन-दिन बढ़ती गयी। उन्हींके गुण गाता हुआ वह त्र्यम्बकेश्वरको लौट गया।

१४–महार और ब्रह्मराक्षस

पैठणमें एक महार चोरी करके ही अपनी जीविका चलाता था। एक चोरीमें वह पकड़ा गया, पैरोंमें बेड़ियाँ पड़ीं और कारागार पहुँचाया गया। कारागारमें उसे खानेको नहीं मिला, शरीरको बड़े कष्ट हुए, सिरपर बाल बढ़े, उनमें जूएँ पड़ गयीं और सर्वाङ्ग विकल हो गया एवं प्राण आँखोंमें आकर अटक रहे।

घर 'वैकुण्ठका सगुण ब्रह्म' स्वयं आकर श्रीखण्डियाके नामसे एकनाथकी सेवा करता था। स्वय एकनाथ महाराजके समकालीन दासो पन्तने भी यही वर्णन किया है कि एकनाथके यहाँ स्वयं 'नन्दनन्दन' चन्दन घिसा करते और पानी भरा करते थे। एकनाथ महाराजके नाती मुक्तेश्वरने एकनाथकी आरतियो और अन्य पद्योंमें इस कथाको दोहराया है और 'श्रीखण्डाख्यान' नामसे ९४ ओवियोंका एक स्वतन्त्र प्रकरण भी लिखा है । दासो पन्त एकनाथ महाराजके साथ बहुत रहे थे और मुक्तेश्वरको वचपनमें एकनाथ महाराजका सत्सङ्ग प्राप्त हुआ था। ये प्रमाण हैं। जो सामान्य नहीं हैं, तथापि स्वय एकनाथ महाराजके अपने हाथके लिखे भी दो प्रमाण मौजूद हैं जो यहाँ दिये जाते हैं । पाठक इनका खूब अच्छी तरहसे विचार करें। एकनाथ महाराजने अपने 'रुक्मिणी-स्वयवर' नामक लोकप्रिय ग्रन्थके १६ वें प्रसगमें श्रीकृष्ण-विवाहके पश्चात् वशपात्रदानका वर्णन करते हुए कहा है—

'पहले पितामहके पिता (भानुदास) पर भगवान् सुभानु प्रसन्न हुए और उन्होंने भानुदासके वशको तत्त्वत हरिचरणोंमें लगा दिया। प्रह्लादपर कृपा थी इससे भगवान् वलि राजाके द्वारपाल बने। वैसी ही यह वात भी है। भगवान् श्रीकृष्णकी ऐसी कृपादृष्टि है।'

'वैसी ही यह वात भी है' इस कथनमें, हमारे विचारमें उसी कथाका स्पष्ट सकेत है। अन्तर इतना ही है कि बलि प्रह्लादके पोते थे और एकनाथ भानुदासके परपोते । प्रह्लादका पुण्य-बल

महान् था इससे भगवान् उनके पोतेके द्वारपाल बने और भानुदास-का पुण्यबल भी महान् था इससे भगवान् भानुदासके परपोतेके यहाँ सेवक बनकर रहे। एकनाथ महाराजका यहाँ यही अभिप्राय माल्रम होता है। पर इससे भी अधिक स्पष्ट प्रमाण एकनाथ महाराजके अभगोंमें हैं। 'गाथापञ्चक' की नाथगाथामेंसे एकनाथ महाराजके रचे हुए कुछ अभंगोंका आशय यहाँ देते हैं—

महाराज कहते हैं—'आपने सेवा करके मेरा नाम बढाया। आप ऐसे कृपालु और उदार है। आप नाना प्रकारकी सामग्री जुटाते रहे। मैं आपसे कभी उऋण नहीं हो सकता। पूजाकी सामग्री आप बराबर जुटाते रहे। आपने कभी कोई कमी न माल्रम होने दी। सचमुच ही मैं अपराधी हूँ, पतित हूँ। जड जीवोंको आपने उबारा। भगवन्! आप कृपालु है, प्रेमवश आपने सेवा भी की। लीप-पोतकर स्थान स्वच्छ करना, मेरे वचनका पालन करना, चन्दन घिसना, आपने दासके लिये सब कुछ किया और मैं ऐसा पतित अपराधी हूँ कि मैंने आपसे यह सेवा करायी।'

इस प्रकार ३५० वर्षसे जिस बातको लोग सच मानते आये हैं, जिस बातके प्रमाणस्वरूप आज भी 'श्रीखण्डिया-राजण' (कुण्डा) पैठणमें देख सकते हैं, जिस बातकी गवाही अमृतराय, महीपति, मोरोपन्त-जैसे प्रेमी कवि दे रहे हैं, जो बात दासोपन्त-मुक्तेश्वर-जैसे एकनाथके समकालीन विचक्षण सन्त कह रहे हैं और जिस बातका सबसे बड़ा प्रमाण यह कि स्वयं एकनाथ महा-राज कह रहे हैं, उसे जो अप्रमाण कहनेको तैयार हों, उन्हें नमस्कार हैं! सर्वगत चिद्रूप परमेश्वर सगुणरूपमें दर्शन देते हैं यह बात अनुभवसे जाननेकी है, शब्दोंसे साबित करके दिखानेकी

दत्तात्रेयके दर्शन हुए और तबसे दासोपन्त दत्तराज-सखा कहलाने लगे। दासोपन्तका समग्र चरित्र यहाँ स्थान-सङ्कोचसे नहीं दे सकते। इन्होंने श्रीमद्भगवद्गीतापर सवा लाख ओवियाँ लिखी हैं और अन्य छोटे-बडे ४० ग्रन्थ लिखे हैं। इनके अतिरिक्त इनके ६-७ हजार फुटकर पद्य हैं। मराठीभाषामें दासोपन्तकी जितनी ग्रन्थ-सम्पत्ति किसी दूसरे कविकी नहीं है। कहते हैं, एकनाथका यशोविस्तार देखकर दासोपन्त उनसे ईर्ष्या करने लगे थे, इससे भगवान् दत्तात्रेयने इन्हें शाप दिया और इसीसे इनके ग्रन्थ उतने नहीं चमके। नीलोबारायने भी एकनाथका वर्णन करते हुए दासोपन्तके विषयमें लिखा है कि एकनाथके द्वारपर भगवान्को चोपदारके वेशमें जब दासोपन्तने देखा तब उनका 'अभिमान' नष्ट हुआ। इससे भी यह मालूम होता है कि ईर्ष्यावाली बातके मूलमे कुछ है। जो हो, पीछे एकनाथ महाराजके विषयमें उनका मन अत्यन्त निर्मल हुआ और उन्होंने उनकी स्तुतिमें पद्य भी लिखे। एक पद्यमें उन्होंने भी यह लिखा है कि भगवान् एकनाथके द्वारपाल बने, इस चमत्कारने दासोपन्तको चकित कर दिया। दासोपन्तको इस बातका अभिमान था कि भगवान्का मुझे साक्षात्कार हुआ। भगवान् एकनाथ महाराजके यहाँ द्वारपाल बन खडे हुए। इससे उनका यह अभिमान गलित हुआ। जो कुछ हो, पर इसमें तो कुछ भी सन्देह नहीं कि इस दत्त-भक्तका यह अभिमान कुछ काल बाद नष्ट हुआ और यह तथा एकनाथ समान पदारूढ हुए। एकनाथ और यह जब पहिली बार मिले तब यह अल्पवयस्क थे। उस समय और

उसके बाद ये दोनों दत्तोपासक सन्त कवि अनेक बार एक दूसरेसे मिले हैं और दोनोंकी एकान्तमें बहुत बातें हुई हैं।

इस घटनाके कुछ वर्ष पश्चात् एकनाथ महाराजकी इच्छा हुई कि पण्ढरीकी यात्रा करें। नाथसे शिक्षा पाये हुए उद्धवने उस शिक्षाके अनुसार सब काम सँभालना स्वीकार किया और एकनाथ महाराज बडे ठाटसे पण्ढरीकी यात्राको चले। आसपासके सैकड़ो भक्त उनके साथ हो लिये। एक तो एकनाथ महाराजका सत्सग और दूसरे भगवान् पाण्डुरङ्गके दर्शन, इस अपूर्व योगसे समुत्साहित होकर मार्गमें अनेक भक्त उनके साथ आ गये। इन भक्तोंकी सख्या बराबर बढती ही गयी, यहाँतक कि जब एकनाथ पण्ढरपुरके समीप पहुँचे तब उनके पीछे मानो जनसमुद्र ही उमड़ा चला आता था। मार्गमे बराबर विट्ठल-भजन हो रहा था। चारों ओर झण्डा-पताकाओंका समूह दिखायी देता था। पण्ढरपुरके समीप पहुँचते ही पण्ढरपुरके सहस्रो मनुष्य उनकी अगवानीके लिये आये और गाते-बजाते बडे ठाटसे एकनाथ महाराजको बस्तीमें ले गये, चन्द्रभागामें स्नान, पुण्डरीकके दर्शन, ग्रामकी परिक्रमा यह सब एकनाथ महाराजने यथासाग किया। श्रीविट्ठलका श्याम सगुण रूप एकनाथके हृदयमें सदा खेला ही करता था, पर जो अन्दर था उसीको बाहर देखकर उनके हृदयमें प्रेमका समुद्र उमड पड़ा। गरुड़पारके सामने उनके चार कीर्त्तन हुए। एक दिन कीर्तनमें भानुदासका प्रसग छिड़ा। उस समय भक्तिके आनन्दकी मानो वर्षा होने लगी। एकनाथका

जिन्होंने केवल सुनाम सुना था, आज उनके नेत्र और श्रवण दोनों कृतार्थ हुए। भानुदासका प्रेमपूर्ण चरित्र उन्हींके परपोतेसे सुनकर श्रोताओंकी चित्त-वृत्ति तल्लीन हो गयी।

पण्ढरीनाथ भगवान् श्रीविट्ठलका कीर्तन करते हुए एकनाथ महाराजके मुखसे सैकड़ों प्रासादिक अभग आप ही निकल पड़े। उनमेंसे कुछका भावार्थ नीचे देते हैं—

(१)

'इस महान् क्षेत्रकी रचना देखी। देखा, साक्षात् भू वैकुण्ठ है। तीर्थों और देवताओंका ऐसा सर्वोत्तम समागम और कहीं भी नहीं है। पण्ढरी-जैसा तीर्थ इस भूलोकमे क्या, त्रिलोकमे भी मुझे नहीं दिखायी देता, क्योंकि यहाँ श्रीविट्ठलमूर्तिके दर्शन करते ही सद्गुरु श्रीजनार्दन-धाममें सुखपूर्वक विश्रान्ति मिली।'

(२)

'बड़ी आशा लेकर यहाँतक आये। पण्ढरी देखते ही पावन हो गये। गरुड़ध्वजको देखते ही इस जन्मका कार्य सफल हो गया। भीमातटपर श्रीविट्ठलमूर्ति देखकर एकाजनार्दनमें विश्रान्ति मिल गयी।'

(३)

'अनन्तके गुण अपार अनन्त हैं। श्रुति-शास्त्र भी उनका पार नहीं जानते। वह अनन्त भगवान् यहाँ ईंटपर खड़े हैं, कटिपर हाथ रखे हैं और करुणा-दृष्टिसे भक्तोंकी ओर देख रहे हैं।'

(४)

'विट्ठल-नाम खुला मन्त्र है, वाणीसे सदा इस नामको जपो। इससे अनन्त जन्मोंके दोष निकल जायँगे। संसारमें जो आये हो तो निरन्तर विट्ठल-नाम लेनेमें जरा भी आलस्य मत करो। इससे साधन सधेंगे, भव-बन्धन टूटेंगे। विट्ठल-नामका जप करो। एकनाथ जनार्दनमें रहकर उठते-बैठते, सोते-जागते, रात-दिन विट्ठल-नामका जप करता है।'

(५)

'प्रेमसे हरिनाम गाओ। प्रेमसे कीर्तन-रंगमें मस्त होकर नाचो। इससे तरोगे, तरोगे, संसारसे तर जाओगे। इसमे कोई और दूसरी बात नहीं है। एकाजनार्दनकी भक्तिका यह निजधाम है। इससे क्षणमात्रमें तर जाओगे।'

शाके १५०५ में एकनाथ महाराज आलंदी पधारे। एक दिन महाराजके गलेमे सूजन आ गयी और पीडा होने लगी। बहुत-सी दवाएँ की गयीं पर सूजन कम न हुई। तीसरे दिन स्वप्नमें ज्ञानेश्वर महाराजने दर्शन देकर उनसे कहा, 'मेरे गलेमें अजान-वृक्षकी* जड़का फंदा पड़ा हुआ है। उसे तुम स्वयं यहाँ आकर दूर करो। इससे तुम्हारे गलेकी पीड़ा दूर होगी।' तब साथमें भक्त-समुदायको लेकर कीर्तन करते हुए एकनाथ महाराज आलंदी पहुंचे।

---

* ज्ञानेश्वर महाराजकी समाधिपर जो अजान नामक अश्वत्थवृक्ष है वह ज्ञानेश्वर महाराजका ही लगाया हुआ बताया जाता है।

नाथ आलंदी पहुँचे तब वहाँ वस्ती नहीं थी। चारों ओर घनी झाड़ियाँ थीं, लोग अन्दर जाते डरते थे। आलंदीमें श्रीसिद्धेश्वरका स्थान अत्यन्त प्राचीन है। वहाँ उस समय दिव्य तपोवन था। साथके लोगोको वाहर ही वैठाकर ज्ञानेश्वर महाराज-की समाधिकी खोज करने एकनाथ महाराज अकेले ही उस वनमें घुसे। समाधिके समीप अजानवृक्ष था। दूरसे उसे उन्होंने देखा। तब उन्हे बडा ही आनन्द हुआ। समाधि-मन्दिरका द्वार खोलकर वह अन्दर गये। 'सहज वज्रासन लगाकर वहाँ ज्ञानदेव महाराज विराज रहे हैं। ऐसा तेज पुञ्ज दिव्य स्वरूप कि जिसकी कोई उपमा नहीं।' (भक्तविजय अ० ४६–१६७) श्रीज्ञानेश्वरके दर्शन होते ही एकनाथ उनके चरणोंपर लोट गये। केशवकृत नाथ-चरित्रमें लिखा है कि वहाँ ज्ञानेश्वर महाराजके साथ एकनाथ महाराज तीन दिन और तीन रात एकान्तमे रहे। इस एकान्तमें कैसा ब्रह्मानन्द-समुद्र उमड़ा होगा उसकी कल्पना विषयपंकके दादुर हम पामर जन क्या कर सकते हैं? एक तो एकनाथ स्वय ही पूर्ण पुरुष थे। दूसरे, अजानवृक्षकी जड़ मस्तकमें लगनेके मिससे श्रीज्ञानेश्वर महाराजने उन्हे साक्षात् दर्शन दिया और यह आज्ञा भी दी कि ज्ञानेश्वरीका प्रचार करो। नाथ जब समाधि-मन्दिरके वाहर आ गये तब लोगोंने उसका प्रवेशद्वार फिर पत्थर लगाकर चूनेसे बन्द कर दिया। यह घटना शाके १५०५ के ज्येष्ठ मासमें हुई। आलंदीमें नाथ एकादशीतक रहे। उस दिन उन्होने कीर्तन किया। नाथके साथ लोग बहुत थे। सबके लिये सीधा-पानीका प्रबन्ध करना बड़ा कठिन हुआ, तब यह माया देखिये,

कि भगवान्‌ने एक लिंगायतके वेशमें आकर खीमा गाड़कर वहाँ एक दूकान खोल दी। द्वादशीके दिन जिसको जितना सीधा जरूरी हुआ उतना उसे उस दूकानसे मिल गया। दाम किसीको भी नहीं देना पड़ा। उस दूकानदारने किसीसे दाम लिया ही नहीं, कहा कि, 'एकनाथ समर्थ हैं, उनसे हम सब हिसाब समझ लेंगे।' जब एकनाथ सब लोगोंके साथ वहाँसे चलनेको हुए तब वह लिंगायत अकस्मात् अन्तर्धान हो गया। इस घटना-का वर्णन स्वयं एकनाथ महाराजने दो अभंगोंमें किया है। आलन्दीमें ही रहते हुए एकनाथने चारों भाई-बहनपर अभंग रचे और आलन्दीकी महिमाका वर्णन करते हुए कहा कि 'यहाँके वृक्ष-पाषाण सभी देवता हैं।' इस स्थानके माहात्म्यके सम्बन्धमें एकनाथ महाराजने स्पष्ट ही कहा है कि, 'अजानवृक्षके पत्ते खाकर आलन्दीमें बैठकर जो इक्कीस बार ज्ञानेश्वरीका पारायण करेगा उसे सद्य ज्ञान प्राप्त होगा।'

नाथ जब पैठणमें लौट आये तब आते ही उन्होंने ज्ञानेश्वरीके संशोधनका काम आरम्भ कर दिया। लेखकों और पाठकोंकी भूलसे जो कई अशुद्ध और असम्बद्ध पाठ घुस गये थे उन्हें उन्होंने निकाल दिया और ज्ञानेश्वरीकी शुद्ध पोथी तैयार कर दी। ज्ञानेश्वरीके संशोधनका यह कार्य शाके १५०६ तारण-नाम संवत्सरमें समाप्त हुआ। एकनाथ महाराजके समयमें ही पैठणमें मौलाना रूम नामके एक मुसल्मान औलिया थे। वे बड़े विरक्त, ज्ञानी और स्वानुभवसम्पन्न महात्मा थे। एक दिन

रहता है वह लिंगदेह पहले ही भस्म हो चुकी थी। पैठणमें या पृथ्वीपर कहीं भी किसी भी मनुष्यका कोई भी अहित कल्पनामात्रसे भी जिन्होंने कभी नहीं किया, यही नहीं प्रत्युत अज्ञ जीवोंने जो-जो कष्ट दिये उन्हे जिन्होंने समुद्रकी-सी अविचल गम्भीरतासे जीत लिया, वह सकल लोकसुहृद्, भूतदयावल्लभ और भगवद्भक्तशिरोमणि एकनाथ गंगा-स्नान करके बाहर निकले। गंगाको सम्मुख करके पीढ़ेपर बैठे और श्रीकृष्णस्वरूपका ध्यान करने लगे। वह ध्यान फिर कभी न टूटा! वह उसी परमानन्दमें लीन हो गये, इसी अवस्थामें देह छोड़ दी और आप निजधामको चले गये!*

अपनी वयस्के पहले २५ वर्ष उन्होंने भगवत्-प्राप्तिकी साधनामें विताये और जब गृहस्थाश्रममे प्रवेश किया तबसे सारा जीवन परोपकारमें लगा दिया। *'प्राणैरर्थैर्धिया वाचा'* अपने प्राण, अपनी सम्पत्ति, अपनी बुद्धि और अपनी वाणी सब कुछ लोक-कल्याणमें दे दिया और अपना जन्म सफल किया। पैठण-क्षेत्रमें उन्होंने भगवन्नामकी वर्षा की और भूलोकका दुरितदैन्य दूर किया। उन सच्चिदानन्दस्वरूप एकनाथ महाराजके चरणोंमें हमारे अनन्त प्रणाम हैं।



* कुछ वर्ष पहले लोगोंका यह खयाल था कि शाके १५२१ में एकनाथ महाराज समाधिस्थ हुए। परन्तु इस पुस्तकके मूल लेखकने शाके १८२६ में पैठणमें पुराने कागज-पत्रोंको देखते हुए असली समाधि-शाक १५२१ ढूँढ़ निकाला और 'केसरी' पत्रमें उसे जाहिर कर दिया। तबसे सबने इसे मान लिया है।

ॐ

नाथवाणीका प्रसाद

ॐ

नाथवाणीका प्रसाद

चतुःश्लोकी भागवत

चतुःश्लोकी भागवत मूल श्रीमद्भागवतके द्वितीय स्कन्धके नवें अध्यायमें है। सृष्टिके मूलारम्भका प्रसग है। ब्रह्मदेव सोचने लगे कि *'प्रपञ्चनिर्माणविधिः कथं भवेत्'* प्रपञ्च कैसे रचा जाय? पर उनकी बुद्धि चली नहीं, गति कुण्ठित हो गयी, तब उदकमेंसे एक ध्वनि निकली, 'तप करो, तप करो।' यह ध्वनि किसने की, यह उन्होंने नहीं जाना, पर उन्होंने इतना समझा कि यह आदिनारायणकी आज्ञा है। इस आज्ञाको मानकर उन्होंने कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय और मनका सयम करके कठोर तप किया। उस दिव्य तपसे भगवान् प्रसन्न हुए और अपना दर्शन देकर भगवान्ने उन्हें दिव्यलोक दिखाया। भगवान् उच्च सिंहासनपर आरूढ हैं, उनके चारों ओर चार, सोलह और पाँच शक्तियाँ खड़ी हैं (चार अर्थात् प्रकृति, पुरुष, महत्तत्त्व और अहङ्कार, सोलह अर्थात् पञ्च कर्मेन्द्रिय, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च महाभूत और मन अथवा एकादश इन्द्रिय और पञ्च महाभूत; पञ्च तन्मात्रा) और

अन्यत्र कभी स्थिर न रहनेवाले सब प्रकारके ऐश्वर्य वहाँ स्वाभाविक-रूपसे विद्यमान हैं तथा भगवान् अपने स्वरूपमें रममाण हैं।

भृत्यप्रसादाभिमुखं दृगासवं
प्रसन्नहासारुणलोचनाननम्।
किरीटिनं कुण्डलिनं चतुर्भुजं
पीताम्बरं वक्षसि लक्षितं श्रिया॥

(श्रीमद्भा० २।९।१५)

भगवन्मूर्ति चतुर्भुज दिखायी देती थी, भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये उत्सुक थी, दृष्टि अत्यन्त मोहक थी, मुखपर किञ्चित् हास्य विराज रहा था, नेत्र आरक्त थे, मस्तकपर किरीट और कानोंमें कुण्डल चमक रहे थे। पीताम्बर परिधान किया था, वक्षःस्थलपर लक्ष्मीका चिह्न था। ब्रह्मदेवने प्रभुको प्रेमाश्रु-लोचनोंके साथ वन्दन किया। भगवान्‌ने कहा, 'मैं तुम्हारे तपसे प्रसन्न हुआ हूँ।'

प्रत्यादिष्टं मया तत्र त्वयि कर्मविमोहिते।
तपो मे हृदयं साक्षादात्माहं तपसोऽनघ॥
सृजामि तपसैवेदं ग्रसामि तपसा पुनः।
बिभर्मि तपसा विश्वं वीर्यं मे दुश्चरं तपः॥

(श्रीमद्भा० २।९।२२-२३)

'सृष्टि-कर्ममें जब तुम्हें मोह हुआ तब मैंने ही 'तप करो, तप करो' की ध्वनि की थी। हे अनघ! तप साक्षात् मेरा हृदय है, तप स्वयं मैं ही हूँ। मैं विश्वका सृजन तपसे करता हूँ, फिर तपसे ही संहार करता हूँ और तपसे ही विश्वका पालन करता हूँ। तप मेरी अमोघ शक्ति है।'

अनन्तर भगवान्‌ने ब्रह्मदेवको चार श्लोकोंमें अपना परम गुह्य ज्ञान बताया। वही चतुःश्लोकी भागवतके नामसे प्रसिद्ध है। इसपर श्रीएकनाथ महाराजका ओवी-वृत्तमें बड़ा ही सुन्दर भाष्य है। चतुःश्लोकी भागवतका प्रथम श्लोक इस प्रकार है—

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥
(श्रीमद्भा० २।९।३२)

'अर्थात् सृष्टिके पूर्वमें मैं ही था। सत् अथवा असत्‌के परे कारणरूपसे और कुछ भी नहीं था। सृष्टि होनेपर यह सारा जगत् मेरा ही स्वरूप है। प्रलय होनेपर जो कुछ रह जाता है वह भी मैं ही हूँ।'

इसपर एकनाथ महाराजका भाष्य है—

'सृष्टिके पूर्वमें मैं निजस्वरूप, शुद्ध निर्विकल्प स्वानन्द-कन्दस्वरूप अनूप पूर्ण ब्रह्म था। उस पूर्णमें न सत् था, न असत् था। सत् अर्थात् सूक्ष्म मूल, असत् अर्थात् नश्वर मूल। सृष्टिके पूर्वमें मैं इन सदसत्‌के परे निर्मल स्वरूपमें था।' (८७, ९६, ९७, १०२)

और फिर यह सृष्टि भी 'मैं' ही कैसे हूँ, यह एकनाथ महाराज बतलाते हैं—

'जो चीनीकी मिठास है वही चीनी है। वैसे ही चिदात्मा जो है वही यह लोक है। संसारमें मुझसे भिन्न और कुछ भी नहीं है।'

'सुवर्ण ही सुवर्णालङ्कार बनता है, तन्तुसे भिन्न पट नहीं रहता, मृत्तिकासे भिन्न घट नहीं रहता, उसी प्रकार स्थूल-सूक्ष्म संसार मेरी चित्सत्तासे भिन्न नहीं रहता। जैसे वट और वटकी जड़ें हैं वैसे ही मैं परमात्मा और ये लोक हैं। प्रलयके पश्चात् भी मैं कैसे हूँ, यह देखो। कछुआ अपने अवयव बाहर फैलाता और फिर समेट लेता है। दोनों अवस्थाओंमें कछुआ कछुआ ही है, वैसे ही मायाके फैलावमें भी और मायाके सिमटनेमें भी मैं ही एक परमात्मा हूँ। तात्पर्य, सृष्टिके आदि, मध्यान्तमें एक नारायण-के सिवाय और कुछ भी नहीं है। वैसे ही सब नाम-रूप-सम्बन्ध हैं, भूत-भूतादि भेद हैं। उनके लय होनेपर मैं ही स्वानन्दकन्द परमानन्द निजरूपमें रह जाता हूँ। जिसे वस्त्र कहते हैं, यथार्थमें वह तन्तु ही है। वैसे यह जगत् यथार्थमें चिद्रूप है। इसलिये सृष्टिके आरम्भमें मैं हूँ, सृष्टिके रूपमे मैं हूँ, अन्तमें सृष्टिका नाश होनेपर मैं ही अविनाशी सच्चिदानन्द रह जाता हूँ।'(१२०, १२५, १२६)

यह प्रथम श्लोकका भाष्य हुआ। अब दूसरा श्लोक देखिये—

ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथा भासो यथा तमः॥

(श्रीमद्भा० २।९।३३)

अर्थात् 'सत्यार्थको छोडनेसे जिसकी प्रतीति होती है, आत्मा-मे जिसकी प्रतीति नहीं होती वही माया है, (वस्तु नहीं) भास है, (प्रकाश नहीं) अन्धकार है।'

नाथ-भाष्य—

'मैं परमात्मा अधिष्ठान हूँ। उस मुझ सत्यार्थको न देखकर जो-जो कुछ द्वैत भान होता है वही माया है। कनक-बीज (यानी धतूरेका बीज) खानेसे मनुष्य जैसे सुध-बुध खो देता है और फिर जहाँ कुछ भी नहीं होता वहाँ व्याघ्र, वानर, शश, मत्स्यादि नाना प्रकार देखता है, वैसे ही मोहमें मायाका यह भास है। (१३६,१३७)

सूर्यके अदर्शन होनेसे तम प्रबल होकर बढ़ता है, पर सूर्योदय होते ही तम कहीं भी नहीं रह जाता। मायाकी भी वैसी ही बात है।

आत्मस्वरूप स्वयं आनन्दघन है, नित्य है, निर्धर्म है, निर्गुण है। 'उस स्वरूपमें जो 'मैंपन' स्फुरित होता है वही मायाका जन्म-स्थान है।' (१४५)

एकनाथ महाराज आगे समझाते हैं—

'देह मिथ्या छाया है। स्वरूप-प्राप्ति मिथ्या माया है। यह सच जानो कि छाया-माया समान है। यह भी जानो कि निजात्म-प्राप्तिके बिना निज माया नहीं छूट सकती। उस आत्म-प्राप्तिके लिये सद्गुरु-चरणोंकी सेवा करनी चाहिये।'

अब तीसरा श्लोक देखिये—

यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्॥
(श्रीमद्भा० २।९।३४)

सावकाश श्रीकृष्ण-हृदय है, वृत्तिशून्य होकर सत उसीमें रहते हैं। ज्ञान, वैराग्य, शक्ति-सम्पुटसे जो मुक्त पुरुषरूप मोती निकले उन्हींकी माला कण्ठमें शोभा पा रही है। भिन्न-भिन्न पञ्चमहाभूत हैं, वैसी ही उनकी अँगुलियाँ हैं जिनका अधिष्ठान उनका करतल है, जिसकी मुट्ठीमें पाँचों मिले हुए हैं। चारों क्रिया-शक्तियाँ उनकी चार भुजाएँ हैं। एक-एक भुजामें एक-एक आयुध है। आत्यन्तिक तेजसे तेजाकार बना हुआ वह चक्र देखिये, जो द्वैतदलनमें तेज धारवाला और अरिमर्दनमें अत्यन्त उद्‌भट है।' (*प्रसंग १*)

* * *

'जो-जो कुछ सुन्दर दिखायी देता है वह श्रीकृष्णके ही अशसे है, उससे ऑंखें ऐसी दीवानी हो गयीं कि भगवान्‌के मयूरपिच्छमें जा लगीं।

'जिसने एक बार श्रीकृष्णरूपको देखा उसकी आँखें फिर उससे नहीं फिरतीं, अधिकाधिक उसी रूपको आलिङ्गन करती हैं और उसीमें लीन हो जाती हैं।' (*प्रसंग १*)

* * *

'ऐसे धीर वीर उदार अति गम्भीर गुणागुण और सुन्दर पृथ्वीपर एक यदुवीर ही हैं और दूसरा कोई नहीं है।' (*प्रसंग १*)

माँ-बापकी राय रुक्मीको पसन्द नहीं हुई। उसने श्रीकृष्णकी निन्दा की, वह निन्दा भी एकनाथ महाराजकी वाणीमें सुनिये कि कितनी सच्ची है!

कृष्ण-निन्दा

रुक्मीने कहा—

'कृष्णसे सम्बन्ध करना तो ठीक नहीं है। यह क्या आपको अभी बताना होगा? इसने अपने अहमामाको मार डाला! (जो अपने अहमामाका नहीं हुआ) वह हमारा क्या होगा? फिर इसके कुलका भी कोई ठिकाना नहीं है! कोई कहते हैं; यह नन्दनन्दन है, कोई कहते हैं; नहीं, यह वसुदेव-सुत है; इसके बापतकका पता नहीं है। इसका कोई कुल-गोत्र ही नहीं है! इस कृष्णका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व भी नहीं है, यह तो अपने प्रेमियोंका दास है। इसका कर्म देखिये तो दूसरोंके घरमें घुसकर गोरसकी चोरी करना है। इस चोर-विद्यामें यह इतना पक्का है कि कोई इसे पकड़ भी नहीं सकता, ऐसा निपट चित-चोर है। इसका कोई काम खुले मैदान नहीं होता, संसारमें सदा लुका-छिपा रहता है। इसके छिपनेके स्थान मुझे मालूम हैं। कभी तो वैकुण्ठके पर्वतमें जाकर छिपता है, कभी क्षीर-सागरमे गोता लगाता है, कभी शेषनागके फनपर सोनेका बहाना करके पड़ा रहता है। कोई बड़ा संकट उपस्थित हुआ देखता है तब यह कभी मत्स्य बन जाता है, कभी वाराह बन जाता है, कभी पीठको मजबूत करके कछुएका रूप धारण कर लेता है। दैत्यको बलवान् देखकर यही भिखारी बन गया था। बलिने इसे अपना द्वारपाल बनाया! इसका न कोई रूप है, न इसमें कोई गुण है, न इसके रहनेका कोई ठिकाना है! इसका सिंहासन

क्या होगा ? इसके तो वृत्ति ही नहीं है ! इसके न कोई देहाभिमान है, न मानापमान है, इसकी गाँठमें धन भी कहाँसे होगा ? यह तो सागका बचा-खुचा पात* खानेवाला है ! इसकी माँ भी दो हैं, जो दो जगह रहती हैं, एक देही है तो एक विदेही है—एक देवकी है तो दूसरी यशोदा है। कुल-कर्मको मिटाना हो, अपने साथ सबको मिट्टीमें मिलाना हो, जीवतकका अन्त करना हो तो कोई कृष्णको वरण करे।' (*प्रसंग २*)

रुक्मीने की तो निन्दा, पर हो गयी वह महत्तम स्तुति ! भगवान् ऐसे अगुणी-गुणी हैं कि उनकी निन्दा हो ही नहीं सकती।

रुक्मिणीने श्रीकृष्णके नाम सात श्लोकोंकी एक प्रेम-पाती लिखी और सद्भाव नामक ब्राह्मणके हाथ श्रीकृष्णके पास भेजी। वह ब्राह्मण मनोवेगके घोड़ेपर बैठकर द्वारकाको गया। द्वारकाके बाह्यप्रदेशकी रमणीयता, द्वारकानगरी और श्रीकृष्णमूर्ति देखकर वह आनन्दसे पागल हो गया।

रमणीक द्वारका

'द्वारकाके बाह्यप्रदेशमें जीव-शिव रमण करते हैं। वसन्त सुमनको सदा सुप्रसन्न रखता है। ताप-सन्ताप किसीको होता ही नहीं। विमल प्रेमसे कमल खिल रहे हैं, कृष्णषट्पद (कृष्ण-

---

* भोजनके बहाने द्रौपदीका सत्त्व-हरण करने आये हुए दुर्वासा मुनिकी कथा। उस अवसरपर कृष्णने द्रौपदीकी रिक्त थालीमेंसे सागकी बची-खुची पत्ती ही खाकर डकार ली थी।

भौंरे) गुञ्जार कर रहे हैं जिसे सुनकर गन्धर्व मुग्ध होकर चुप बैठे हैं, सामवेद भी मौन हो गये हैं। द्राक्षोंके गुच्छे डोल रहे हैं, मुक्तपरिपाकसे उनमें बड़ी मिठास आ गयी है। सब काम यहाँ पूरे हो जाते हैं और उनकी मिठास बड़ी ही मीठी होती है। कृष्ण कोकिलाएँ अपनी मधुरवृत्तिसे निःशब्दका शब्द कूजन करती हैं जिसे सुनकर सनकादिक सुखी होते और प्रजापति तटस्थ हो जाते हैं। मोर आनन्दसे ऐसे नाचते हैं कि अप्सराएँ नाचना बन्द करती हैं और उमाकान्त अपना ताण्डव-नृत्य भूल जाते हैं। ऐसी अद्भुत हरिलीला है! द्वारकावासी विमल हंस मुक्त मोती ही चुगते हैं जिसे देखकर परमहंसके भी लार टपका करती है। शुकादि पक्षी भी इसी लीलाका अनुवाद करते हैं जिसे सुनकर वेदान्त दंग रह जाता है। द्वारकाके पक्षियोंकी बोलीसे गुह्यका गुह्यार्थ प्रकट होता है। द्वारकामें बड़ा पक्का सौदा होता है। पर वहाँ दो अक्षरोंका सच्चा सिक्का ही चलता है। जैसा लेना वैसा देना, किसीके लिये कुछ भी कम न होना, यही यहाँका व्यवहार है।' (*प्रसंग ३*)

यह विप्र जब दरबारमें पहुँचा तब 'सुवर्ण-सिंहासनपर आदिमूर्ति सहज स्थितिमें विराजमान थे।' उन्होंने ब्राह्मणको देखा और वे समझ गये।

श्रीकृष्णके पास रुक्मिणीने जो पाती भेजी थी उसका तीसरा श्लोक देखिये—

तन्मे भवान्खलु वृतः पतिरङ्ग जाया-
मात्मार्पितश्च भवतोऽत्र विभो विधेहि ।
मा वीरभागमभिमर्शतु चैद्य आराद्
गोमायुवन्मृगपतेर्बलिमम्बुजाक्ष ॥
(श्रीमद्भा० १०।५२।३९)

एकनाथ महाराजकी वाणीसे इसका विशद अर्थ सुनिये—

'मनसे, वाणीसे और कायासे मैं तुम्हारी हो चुकी। हे यदुराय! अब विवाह-विधि करना बाकी है सो तुम करो। ऐसा न हो कि कृष्ण-केसरीकी चीज शिशुपाल-शृगाल ले जाय। यदि ऐसा होगा तो हे कमलनयन कमलापति! बडी अपकीर्ति होगी।'

अम्बादेवीके मन्दिरसे कुलवधूको उठा ले जानेकी विदेह-राज्यकी विधिका उल्लेख कर तथा इसी प्रकार अपने आपको हर ले जानेकी विनती करके अन्तमें रुक्मिणी कहती है—

'यदि तुम्हारी कृपा न हो तो ऐसे जीनेमें क्या रखा है? देह-दण्डकी इस बेडीका बोझ और बन्धन व्यर्थ ही कौन ढोता फिरे? यहाँ आकर कृपा करते न बने तो मुझे अपने हाथों मारकर ही चले जाओ। तब कम-से-कम परलोकमें तो तुम्हारा आनन्द प्राप्त करूँगी।' (*प्रसग ४*)

रुक्मिणीकी पाती पढकर श्रीकृष्ण अकेले ही चल पडे। उस समय उनके मुखसे नाथ महाराजकी वाणीके अनुसार यह उद्गार निकला—

'जो दूसरोंकी बाट जोहता है उसका कार्य कुछ भी नहीं बनता। जो सङ्गीका साथ ढूँढता है उसे यश कहाँसे मिले?'

रुक्मिणी-रूप-वर्णन

अब रुक्मिणीका रूप-वर्णन सुनिये—

'सौन्दर्य सुर, नर, पन्नगोंमें बहुत भटका, पर उसे कहीं विश्रान्ति नहीं मिली। तब वह दौड़ गया रुक्मिणीकी देहमें और वहाँ उसे विश्राम मिला। रुक्मिणीकी यह सुन्दर मूर्ति ब्रह्माने नहीं रची, यह श्रीकृष्णके प्रभावसे इस रूपको प्राप्त हुई, वह अच्छाईके शिखरपर चढ़कर सौन्दर्यके ही आकारमें प्रकट हुई। मस्तकके नील कुन्तल क्या थे, अति सुनील नभोमण्डल था। जिसके नीचे निर्मल मुखचन्द्र रुक्मिणी-वदनमें उदय हुआ। चन्द्रमण्डलके आगे-पीछे जैसे तारागणोंके वृत्त, वैसे ही रुक्मिणी-के कानोंमें मोतियोंके कुण्डल जगमगा रहे हैं। श्रीकृष्णके रंगमें रंगा हुआ उसका अभंग सौभाग्य-कुंकुम मुख-चन्द्रमें चन्द्रमा बनकर शोभा पा रहा है। मस्तकपर मोतियोंकी जाली वैसी ही सोह रही है जैसे नभोमण्डलमें नक्षत्र शोभा पाते हैं। श्रीकृष्ण-दर्शनकी प्रतीक्षामें, दृश्यको देखते-देखते उसके नयन थक गये थे और सारा दर्शनीय दृश्य एकत्र होकर उसके नेत्रोंमें आ गया था। घनसाँवरेको देखनेके लिये उसकी पुतलियोंमें घनश्यामता आ गयी थी, दोनों नेत्रोंमें एक ही आशा आकर बैठ गयी थी, अन्दर-बाहरका देखना एक हो गया था, दृष्टि सम हो गयी थी। मुखमें दन्तपंक्ति ऐसी शोभा दे रही थी जैसी ॐकारमें श्रुति। नाकपर नथके चार मोती ऐसे चमक रहे थे जैसे वेदान्तमें 'सोऽहमस्मि।' अधरपर नथका सोनेका अकड़ा लटक रहा था और नाकपर

मोती चमक रहे थे, मानो कृष्णको मोहित करनेका उपाय कर रहे थे। सौभाग्यका कृष्ण-मणि कण्ठमें ऐसे धारण किया था कि कभी न टूटे और किसीको दिखायी भी न दे, मानो कण्ठमें प्राणनाथके साथ एकान्त किये हुई थी। एक ही अङ्गमें भिन्न-भिन्न रूपसे जीव और शिव दोनों बढ़े, इससे कुचकामिनी कुच-भारसे घनस्तनी हो उठी। विद्या और अविद्याके दो पल्लोंने दोनों ओरसे उन्हें ढॉक रखा था, ऐसी वह त्रिगुणकी ॲगिया उसके वक्ष स्थलमें कसी हुई थी जिसे श्रीकृष्णके सिवाय और कौन खोलता ? रुक्मिणी-कृष्ण-आलिङ्गन ही जीव-शिव-समाधान है। इसीसे दोनो स्तन उभरे थे, श्रीकृष्णका स्पर्श चाहते थे। प्रकृति-पुरुषका जो आलिङ्गन हुआ उससे ॲंगियाकी गॉठ मजबूत बँध गयी। इस गॉठको पुरुषोत्तम ही खोल सकते हैं, यह और किसीसे खुलनेवाली नहीं। दोनो हाथोंमें बाहर जो चूड़ी, बाजू-बन्द, कङ्कन आदि अलङ्कार हैं वे भीतरके शम-दमादि छ सुभट हैं। हाथके कङ्कन जो मधुर ध्वनि कर रहे हैं वह श्रीकृष्णनिष्ठाका राग है। करतलोंका रङ्ग ऐसा मनोहर है कि सन्ध्याराग भी उसके सामने फीका पड़ जाता है। ये करतल सदा श्रीरङ्गकी चरणतल-सेवा करते हैं।' (*प्रसग ७*)

वर-पूजन

कुण्डिनपुरमे श्रीकृष्ण-रुक्मिणीके विवाह-प्रसङ्गमें वर-पूजा करते हुए राजा भीष्मक और रानी शुद्धमतीकी कैसी मनोऽवस्था हुई उसका वर्णन करते हैं—

'श्रीकृष्णका जो रूप देखा तो चारों ओर श्रीकृष्ण-ही-श्रीकृष्ण दिखायी देने लगे। भीष्मक सोचने लगे कि इन अनन्त रूपवाले श्रीपतिका पूजन मैं कैसे करूँ ? पूज्य-पूजकताकी अवस्था भी वह भूल गये। शुद्धमती जल दे रही हैं और राजा चरण धो रहे हैं। सब तीर्थ यह कहकर वह चरणतीर्थ माँग रहे हैं कि श्रीकृष्णपदकी प्राप्ति बड़ी दुर्लभ है। शुद्ध सत्त्वके शुभ्र वस्त्र और चिद्रत्नके अलङ्कार अर्पण कर, भीष्मकने कृष्ण वरका पूजन किया। वृद्ध-परम्परा ऐसी है कि वधूकी माता वरके चरण अपने अञ्चलसे पोंछती है। शुद्धमती चरण पोंछने आयी, श्रीकृष्ण-का मुख निहारने लगी। मस्तकपर मुकुट, कानोंमें कुण्डल, गलेमें कौस्तुभमाला, कटिमें पीताम्बर और मेखला—इन वस्त्रालङ्कारोंसे युक्त घनश्यामका वह अनुपम रूप-सौन्दर्य देखकर शुद्धमतीके नेत्र पूर्ण तृप्त हुए। श्रीकृष्ण-चरणोंमें हल्दी लगाते हुए उनका अहंभाव नष्ट हो गया, वे लाज खो बैठीं, 'मेरा-तेरा' की उपाधि भी हार चुकी। श्रीकृष्ण-प्रभाके दीपकी दीप्तिने तब श्रीकृष्णकी आरती की। कृष्णमें परम प्रीति लगनेसे चित्तवृत्ति तद्रूप हो गयी।'

वन्दन

विवाह-सम्बन्धी अन्य विधि होनेके पश्चात् जब वधूद्वारा वरके चरण-वन्दनका समय आया तब—

'रुक्मिणी श्रीकृष्णके चरण-वन्दन करने चली, लज्जा उमड़ी और वक्रदृष्टिसे देखने लगी, यह देख रुक्मिणी उद्विग्न हुई—चित्तमें शङ्का उठी। अभिन्न-भावमें यह भेद उठा। इससे नमन

भी ठीक नहीं हुआ। उसने नमन तो किया, पर समचरण उसके मस्तकमें नहीं लगे। माँ हँसेगी, सखियाँ हँसेंगी, यह जो भाव उसके चित्तमें उठा, यह अभिमान था। अभिमानसे ही उसने अपने करतलसे अँगूठा पकडा और यह निश्चय किया कि अबके वन्दनमें भूल न होने दूँगी। पर जब उसने फिर मस्तक नवाया तब समचरणोंने एक दूसरेका आलिङ्गन किया और उसका मस्तक धरतीपर लगा, समचरणोंमें नहीं। तब वह अत्यन्त खिन्न हुई जो ललाटमें चरण नहीं लगे। बात यह है कि अभिमानका जितना बल होता है उतना ही घना पटल दृष्टिपर पड़ता है। इसीसे चरण-कमल नहीं प्राप्त हुए। उसके नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगी, सारा शरीर थर-थर काँपने लगा। चरणोंके वियोगसे शरीरका भार असह्य हो गया। वह अचेत-सी हो नीचे गिर पडी। उद्धवने यह देखा, वे दौड गये रुक्मिणीके पास और उसकी बाँह पकड़कर बोले, 'माँ, उठो! श्रीकृष्णके चरणोंको वन्दन करो। लज्जा और अभिमानको छोड दो, मनको निर्विकल्प कर लो और वृत्तिको सावधान करके हरिचरणोंको वन्दन करो।' उद्धवके वचनोंसे रुक्मिणीके धीरज बँधा। उसने लाज छोड दी और वह हरि-चरणोंमें आ गयी। वृत्ति समाहित हुई, शब्दकी गति बन्द हो गयी, मौन भंग हो गया और रुक्मिणी समचरणोंको वन्दन करती हुई परमानन्दको प्राप्त हुई। विषय-दृष्टि उपराम हुई, सारी सृष्टि निजानन्दमें समा गयी, त्रिपुटीका लय हो गया। न वरका स्मरण रहा, न वधूका, सारा दृष्टान्त ही वह गया और अर्थ, स्वार्थ और परमार्थ अनन्त होकर अनन्तमें मिल गये।'

देवी-देव एक

लाज और अभिमान त्यागकर मनको निर्विकल्प करके रुक्मिणी जब श्रीकृष्ण-चरणोंमें रम गयी—

'चरणोंका आलिङ्गन होते ही अहं-सोऽहंकी गाँठें खुल गयीं। सारा संसार आनन्दमय हो गया। सेव्य-सेवक-भावका कोई चिह्न ही नहीं रह गया। विवाहका कोई स्मरण भी न रहा। देवी और देव एक हो गये।'

नमूनेके तौरपर ये कुछ ही अवतरण यहाँ दिये हैं। सम्पूर्ण ग्रन्थ ऐसा ही है। विवाहकी एक-एक बातका विशद और सुन्दर वर्णन इस ग्रन्थमें एकनाथ महाराजने किया है और उसमें भगवान् और भक्तके आनन्दमय अखण्ड मिलनकी मानो साधना ही बतायी है।



चिरञ्जीव-पद

एकनाथ महाराजका यह ४२ ओवियोंका छोटा ग्रन्थ भी अत्यन्त लोकप्रिय है। चिरञ्जीव-पद अर्थात् अविनाशी ब्रह्म-पद। इस ब्रह्म-पदकी प्राप्तिका साधन इस ग्रन्थमें बताया गया है। कुछ अवतरणमात्र यहाँ देते हैं। वैराग्य ही मुख्य साधन है। पर वैराग्य क्या है? विरक्त किसको कहते हैं?

विरक्त

'सच्चा विरक्त उसीको कहना चाहिये जो मानके स्थानसे (अर्थात् जहाँ लोग उसे मानते हैं—उसकी इज्जत करते हैं) दूर रहता है। वह सत्सङ्गमें स्थिर रहता है, मानके लिये कदापि नहीं तरसता। अपना कोई नया सम्प्रदाय नहीं चलाता (नया अखाडा नहीं खोलता, अपनी गद्दी नहीं कायम करता), यह जानता है कि इससे अहता बढ़ती है। जीविकाके लिये वह दीन होकर किसीकी खुशामद नहीं करता। वह लौकिक नहीं होता, उसे वस्त्रालङ्कारकी इच्छा नहीं होती, परान्नमें रुचि नहीं होती, स्त्रियोंको देखना उसे अच्छा नहीं लगता। स्त्रियोंमे बैठना, स्त्रियोका देखना, स्त्रियोंका भाव बताना, स्त्रियोंका पैर दबाना, स्त्रियोंका बोलना इसे पसन्द नहीं होता। यह सदा यही मनाता रहता है कि स्त्रियोका सङ्ग न हो, स्त्रियोंके साथ एकान्त न हो, स्त्रियोंका परमार्थ गले न पडे। स्त्रियाँ पुरुषोंको हानि ही पहुँचाती हैं।'

*　　　*　　　*

गृहस्थाश्रमी साधकके लिये कहते हैं—

'अपनी स्त्रीके सिवाय अन्य स्त्रीसे कोई सम्बन्ध न रखे। किसी भी स्त्रीको अपने सन्निधि सहसा आश्रय न दे। अपनी स्त्रीसे भी केवल समुचित ही सम्बन्ध रखे और चित्तको कभी आसक्त न होने दे।'

*   *   *

अखण्ड एकान्त

'नर-नारी सेवा करके भक्ति और ममता उपजाते हैं। जो शुद्ध पारमार्थिक है वह स्त्रियोंसे दूर रहता है। अखण्ड एकान्त करना चाहिये। प्रमदासङ्गसे सदा बचना चाहिये। जो निरभिमान होकर निःसङ्ग हो गया हो वही अखण्ड एकान्त-सेवन कर सकता है।'

'सारांश—स्त्री, धन और प्रतिष्ठा चिरञ्जीव-पद-प्राप्तिके साधनमें तीन महान् विघ्न हैं। सच्चा अनुताप और शुद्ध सात्त्विक वैराग्य यदि न हो तो श्रीकृष्ण-पद प्राप्त करनेकी आशा करना केवल अज्ञान है। नाथ कहते हैं कि यह मैं नहीं कह रहा हूँ यह जिनका वचन कृष्णने उद्धवसे कहा और वही मैंने दोहराया है। इसलिये इसे जिसका मन सच न माने वह नाना विकल्पोंसे श्रीकृष्ण-चरण कदापि लाभ नहीं कर सकता।'

साधावया वैराग्य ज्ञान। मनुष्य देहीं करावा प्रयत्न।
सांगे एका जनार्दन। आणीक यत्न असेना॥

'वैराग्य और ज्ञानसाधना हो तो मनुष्य-देहमें इसके लिये प्रयत्न करो। एका जनार्दन कहते हैं, इसके सिवा और कोई यत्न नहीं है।'

भगवान्के चरणोंमें

५—भगवान्के चरणोंमें अपरोक्ष स्थिति हो जाय तो .ॐ क्षणार्धमें होनेवाली प्राप्तिके सामने त्रिभुवन-विभव-सम्पत्ति भी, भक्तके लिये तृणके समान है ।

सद्गुरु

६—जो शब्दज्ञानमें पारगत है, ब्रह्मानन्दमें जो सदा झूमता रहता है, शिष्यको आत्मभावका यथोचित वोध करा देनेमें जो समर्थ है, देहमें रहते हुए भी जिसमें देहका अहकार नहीं है, घरमें रहकर भी जिसमें घरकी आसक्ति नहीं है, लोगोंके वीच जो लोगोंके समान ही सुखपूर्वक रहता है, वेद-शास्त्र जानते हुए भी जो कुछ अपने व्युत्पत्ति-ज्ञानका डङ्का नहीं पीटा करता और जो सदा अखण्ड शान्तिमें रहता है उसीको सद्गुरु-मूर्ति जानना चाहिये ।

साधक

७—सच्चे साधक वही हैं जो सद्गुरुचरणोंके अङ्कित हैं, जो गुरुवचनपर अपने आपको वेच चुके हैं, जो सद्गुरुके लिये अपना सर्वस्व दे चुके हैं ।

८—जिससे अपने आपको दु:ख होता है वैसा वर्ताव वे किसी प्राणीसे भी कभी नहीं करते । जिससे अपने आपको सुख होता है वैसा वर्ताव वे दीन-जनोंसे करते हैं ।

९—वे अपना अन्तर गुरुप्रतीतिसे धो डालते हैं और अपना वहिर्भाग शास्त्रयुक्तिसे धो डालते हैं । जहाँ ऐसी शुचिता होती है वहीं अद्वैतस्थिति स्थापित होती है ।

१०–याचना किये बिना यथाकाल यदृच्छासे जो कुछ मिले उसे वे गुरुवचनसे मिलाकर मङ्गलमय करके स्वानन्दसे भोग करते हैं।

भागवत-धर्म

११–दारा, सुत, गृह, प्राण सब भगवान्‌को अर्पण कर देना चाहिये। यह पूर्ण भागवत-धर्म है। मुख्यतः इसीका नाम भजन है।

१२–साधु-सतोंसे मैत्री करो, सबसे पुराना परिचय (प्रेम) रखो, सबके श्रेष्ठ सखा बनो, सबके साथ समान रहो।

१३–भगवान्‌की आचारसहित भक्ति सब योगोंका योगगह्वर, वेदान्तका निज भाण्डार, सकल सिद्धियोंका परम सार है।

१४–गृहाश्रममें रहकर भी जिसका चित्त मेरे (भगवान्‌के) रगमें रंग गया और इस कारण जिसकी गृहासक्ति छूट गयी, उसे गृहस्थाश्रममें भी भगवत्प्राप्ति होती है और निज-बोधमें ही सारी सुख-सम्पत्ति मिल जाती है।

ज्ञान और विज्ञान

१५–जीव और परमात्मा दोनों एक हैं। इस बातको जान लेना ही ज्ञान है। वह ऐक्य लाभकर परमात्मसुख भोगना सम्यक् विज्ञान है।

१६–मैं ही देव हूँ, मैं ही भक्त हूँ, पूजाकी सामग्री भी मैं ही हूँ। मैं ही अपनी पूजा करता हूँ। यही सारी उपासना है।

१७–मैं कर्मका आदि, मध्य और अन्त हूँ। मैं कर्म, कर्ता और क्रिया-शक्ति हूँ और कर्मफलदाता श्रीपति भी मैं ही हूँ। यही सारा कर्मकाण्ड है।

अहंकार

१८–आत्मस्वरूपको भूलकर जो अहंभाव उठता है वही अहंकार है जो विकारसे त्रिगुणको क्षुब्ध करता है।

१९–जागृतिका जो विस्मरण है वही स्वप्नसृष्टिका विस्तार है। वस्तुसे विमुख जो अहंकार है वही गुणात्मक संसार है।

जीवधर्म

२०–जीव जीवभावके अनिवार्य प्रवाहमें बहा जा रहा है। इस प्रवाहको जो जीतकर रोक ले वही महावीर है, वही परम शूर है।

२१–सहज अनुकम्पासे प्राणियोंके साथ अन्न, वस्त्र, दान, मान इत्यादिसे प्रियाचरण करना चाहिये। यही सबका स्वधर्म है।

२२–पिता स्वयमेव नारायण हैं। माता प्रत्यक्ष लक्ष्मी हैं। ऐसे भावसे जो भजन करता है वही सुपुत्र है।

२३–काया, वाचा और मनको दृढतापूर्वक अपने वशमें कर लेना चाहिये। निजरूपमें सदा सावधान रहे और अनुसन्धान कभी खण्डित न होने दे।

२४–बहते पानीपर चाहे जितनी लकीरें खींचो, एक भी लकीर न खिंचेगी, वैसे ही सत्त्वशुद्धिके बिना आत्मज्ञानकी एक भी किरण प्रकट न होगी।

२५–धन्य है नरदेहका मिलना, धन्य है साधुओंका सत्संग, धन्य हैं वे भक्त जो भगवद्भक्तिके रंगमें रँग गये।

२६–वैष्णवोंको जो एक जाति मानता है, शालग्रामको जो एक पाषाण समझता है, सद्गुरुको जो केवल एक मनुष्य मानता है, उसे केवल पापी समझो।

चेतन और अचेतन प्रतिमा

२७–प्रतिमाएँ मेरी अचेतन व्यक्ति हैं और सत सचेतन व्यक्ति हैं। अन्तःकरणसे जो उनकी भक्ति करते हैं वे मुझे (भगवान्‌को) प्राप्त होते हैं।

लोकसंग्रह

२८–अभेद-भक्ति, वैराग्य और ज्ञानका स्वयं आचरण करके इसी मार्गपर दूसरोंको ले आनेका नाम ही लोकसंग्रह है।

सुखकी वार्ता

२९–जो निज सत्ता छोडकर पराधीनतामें जा फँसा, उसे स्वप्नमें भी सुखकी वार्ता नहीं मिलती।

३०–यहाँ किसीकी निन्दा या किसीका गुणानुवाद कोई क्या करेगा ? 'मैं ही विश्व हूँ' यह बोध जब हो गया तब निन्दा-स्तुति कहाँ रही ?

धन-लोभ और स्त्री-काम

३१–जो धनके लोभमें फँसा हुआ है उसे कल्पान्तमें भी मुक्ति नहीं मिल सकती। जो सर्वथा स्त्री-कामी है उसे परमार्थ या आत्मबोध नहीं मिल सकता।

कामादिकोंकी होली

३२–जब सूर्यनारायण प्राची दिशामें आते हैं तब तारे अस्त हो जाते हैं वैसे ही भक्तिके प्रबोधकालमें कामादिकोंकी होली हो जाती है।

सत्य

३३–सत्यके समान कोई तप नहीं है, सत्यके समान कोई जप नहीं है। सत्यसे सद्रूप प्राप्त होता है। सत्यसे साधक निष्पाप होते हैं।

३४–वर्णोंमें चाहे कोई सबसे श्रेष्ठ क्यो न हो वह यदि हरि-चरणोंसे विमुख है तो उससे वह चाण्डाल श्रेष्ठ है जो प्रेमसे भगवद्भजन करता है।

नाम-कीर्तन

३५–अन्त शुद्धिका मुख्य साधन हरि-कीर्तन है। नामके समान और कोई साधन ही नहीं है।

प्रिय भक्त

३६–स्वकर्म, धर्म, वर्णाचार तथा अपने अन्य सब व्यवहारों-को करते हुए भी जो सब भूतोंको मदाकार (भगवदाकार) देखता है वही भक्त मेरा प्रिय है।

गोपियोंका आनन्दानुभव

३७–मेरा वह सुख गोपियाँ जानती हैं या मैं श्रीपति ही जानता हूँ जो रासक्रीडाकी रातमें सबको प्राप्त हुआ। जहाँ मैं

आत्माराम क्रीडा करता हूँ, वहाँ काम बेचारा कहाँसे घुस सकता है? मत्काम होकर गोपियाँ निष्काम हो गयीं, उन्हें कामका कोई संसर्ग ही न रहा। उनकी बुद्धि मदाकार हो गयी, इससे वे अपना घर-द्वार, पति-पुत्र, काम-काज सब भूल गयीं। विषय-सुख भूल गयीं, द्वन्द्व-दुःख भूल गयीं, मेरे निदिध्याससे भूख-प्यास भूल गयीं। सच्चिदानन्दस्वरूपका प्रभाव, मेरा निजस्वभाव न जानकर भी गोपियोंका अनन्यभाव परब्रह्मको प्राप्त हो गया।

(अ० १२)

३८—भक्त जहाँ रहता है, वह सभी दिशाएँ सुखमय हो जाती हैं। वह जहाँ खड़ा होता है वहाँ सुखसे महासुख आकर रहता है।

योगसंग्रहस्थिति

३९—चित्त जब संसारस्फूर्तिको त्यागकर चित्स्वरूपमें मिल जाता है तब जीव-शिव एक हो जाते हैं। इसी अवस्थाको योग-संग्रहस्थिति कहते हैं।

त्यागका त्यागत्व

४०—सम्पूर्ण त्यागका जो त्यागत्व है वह, हे उद्धव, मैं तुम्हें बतलाता हूँ। अभिमान सर्वथा त्याग दो। यही त्यागका मुख्य लक्षण है।

४१—सम्पूर्ण अभिमानको त्यागकर मेरी शरणमें आनेसे तुम जन्म-मरण द्वन्द्वोंसे तर जाओगे।

शरणागति

४२–मेरी शरणमें आनेके लिये क्या गिरि-कन्दराओंमें घूमना पडेगा, या गुफाओंमें रहना होगा अथवा चारों दिशाओंमें भटकना पडेगा ?

४३–तुम कहोगे कि तुम्हारा तो कोई ऐसा ठिकाना नहीं है जहाँ जानेसे तुम मिलो, इसलिये पूछ सकते हो कि तुम्हारी शरणमें आनेके लिये मुझे कहाँ जाना होगा ?

४४–किस स्थानमें जाकर तुम्हारी शरण लूँ, यही यदि जानना चाहते हो तो, मैं तो तुम्हारे हृदयमें हूँ। जो हृदयस्थ है उसीकी शरण लो।

४५–सम्पूर्ण भावसे, सर्वस्वके साथ मुझ हृदयस्थकी शरणमें आओगे तो मैं जो सर्वगत हूँ वही तुम हो जाओगे क्योंकि मैं हृदयस्थ सर्वभूतनिवासी हूँ।

४६–तिलभर भी अभिमान रखकर यदि मेरी शरणमें आओगे तो मुझे नहीं पाओगे। कारण, मेरी प्राप्तिमें अभिमान बाधक है।

४७–कुत्तेका छुआ हुआ पक्वान्न जैसे ब्राह्मण स्पर्श नहीं करते वैसे ही जिसके जीमें अभिमान है उस साधकको मैं भी स्पर्श नहीं करता।

४८–रजस्वलाकी वाणी सुनकर पुरश्चरण करनेवाले तपस्वी ब्राह्मण दूर भागते हैं वैसे ही जिस साधनामें अहङ्कार होता है वहाँसे मैं चल देता हूँ।

४९–कोई पुरुष अपनी स्त्रीको परपुरुषके साथ रममाण हुई देखकर जैसे त्याग देता है वैसे ही अभिमानमें रत होनेवाले भक्तको मैं त्याग देता हूँ।

५०–इसलिये अभिमानको त्यागकर मुझ हृदयस्थकी शरणमें आनेसे मैं तेरा उद्धार करूँगा।

५१–सम्पूर्ण भावसे शरणमें आनेसे अभी इसी क्षण तर जाओगे। हाथके कंगनको आरसी क्या?

५२–शरणमें आनेसे कलिकाल तुम्हारे पैरों गिरेगा। भव-भय बेचारा तुम्हारी ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सकता।

५३–मेरी शरणमें आनेसे मेरा बल प्राप्त होता है। सारा भवभय भागता है। कलिकाल काँपने लगता है।

५४–हृदयस्थकी शरणमें आना चाहते हो और वह हृदयस्थ कौन है, कैसा है यह जानना चाहते हो तो उसका स्वरूप सुनो।

५५–नाम-रूपका अभिमान छोड़नेपर जो शुद्ध स्फुरण रह जाता है वही मुझ हृदयस्थका स्वरूप है। उसीकी शरण लो।

५६–नाम-रूप-गुण-वार्ता माया है, उसके परे जो सत्ता स्फुरित होती है वही मुझ हृदयस्थका स्वरूप है।

(अ० १२)

सरल उपाय

५७–अपने मनको मुझे अर्पण करनेका सरल उपाय बतलाता हूँ। यह सरल उपाय है नाम-स्मरण। नाम-स्मरणसे पाप भस्म होता है।

५८—सकाम नाम-स्मरण करनेसे वह नाम जो इच्छा हो वह पूरी कर देता है । निष्काम नाम-स्मरण करनेसे वह नाम पापको भस्म कर देता है ।

५९—पापका क्षालन होनेसे रज-तम जीत लिये जाते हैं और सत्त्वगुण बढ़ता है ।

६०—सत्त्वगुणसे वैराग्यके पैर जम जाते हैं । वैराग्यसे विषय रौंदे जाते हैं । इससे आत्मज्ञान उदय होता है ।

६१—सविवेक-ज्ञानके बढ़नेसे आत्मस्वरूपका चिन्तन होता है । इससे स्थिर शान्ति आती है और तब अन्त:करण मदर्पण होता है ।

६२—मनके मदर्पण होनेसे निज भक्ति उल्लसित होती है ।

६३—पूर्ण निज भक्ति प्राप्त होनेसे अष्ट महासिद्धियाँ भक्तके चरणोंके पास लोटा करती हैं ।

६४—जो सिद्धियोंकी ओर झाँकतातक नहीं वह मेरी पदवी-लाभ करता है । मेरे साथ एक हो जाता है ।

भक्त और भगवान्

६५—जिस भक्तको मेरी निज भक्ति प्राप्त होती है उसके सभी व्यापार मदाकार हो जाते हैं ।

६६—वह जिस ओर रहता है, वह दिशा ही मैं बन जाता हूँ । वह जहाँ चलता है, मैं बराबर ही वह धरा हो जाता हूँ ।

६७–वह जब भोजन करने बैठता है तब उसके लिये मैं ही षट् रस होता हूँ। उसे जल पिलानेके लिये मैं ही जल बनता हूँ।

६८–जब वह पैदल चलता है तब उसका बोध दृश्य जगत्के नानाविध दृश्योंकी भीड़को हटाता चलता है और शान्ति पद-पद-पर उसके लिये मृदु पदासन बिछाती और उसकी आरती उतारती है।

६९–शम-दम आज्ञाकारी सेवक होकर द्वारपर हाथ जोड़े खड़े रहते हैं। ऋद्धि-सिद्धि दासी बनकर घरमें काम करती हैं। विवेक टहलुआ सदा हाजिर ही रहता है।

७०–जब वह बैठता है तब उसके रूपमें मैं हृषीकेश ही बैठता हूँ। वह जब सोने जाता है तब मैं ही उसके लिये समाधि बिछा रखता हूँ।

७१–वह जो कुछ बोलता है वह निःशब्द ब्रह्मका ही शब्द होता है और इसलिये उससे श्रोताओंका तुरंत समाधान होता है।

७२–वह लीलामात्रसे जो कुछ कहता है उससे—प्रत्येक शब्दसे मेरी ही वार्ता उठती है और श्रोता सुनकर तल्लीन हो जाते हैं।

७३–चारों मुक्ति मिलकर उसके घर पानी भरती हैं और श्रीके साथ मैं श्रीहरि भी उसकी सेवा करता हूँ, औरोंकी बात ही क्या है!

७४–इस प्रकार जिन्होंने मेरी सहज भक्तिको पाया उनके सब शौक मैं पूरे करता हूँ। कारण, मेरे प्रति उनकी अनन्य प्रीति होती है।

७५–अधिक विस्तार न करके संक्षेपमें ही कहता हूँ कि अपने भक्तके लिये मैं देह हूँ और भक्त मेरा आत्मा है। वह मेरा जीवन है, मेरा प्राण है। निज भक्त इस बातको जानते हैं।

७६–सहज भक्तिके भीतर मैं आराध्य देव हूँ और वह भक्त है, अन्यथा मैं सम्पूर्ण उसके अन्दर हूँ और वह सम्पूर्ण मेरे अन्दर है।

(अ० १९)

जन और जनार्दन

७७–जनार्दनकी दयालुताको जन नहीं जानते, इसीसे देहाभिमान नहीं त्यागते।

७८–जननी-जठरसे जन्म होता है इसी कारणसे जन 'जन' कहलाते हैं। उस जन-जन्मका जनार्दन मर्दन करते हैं इसलिये वह जनार्दन कहाते हैं।

७९,–वह मरणको मारकर जीवनको बढ़ाते हैं। जीवको मारकर फिर उसीको विदेहस्थितिमें जिलाते हैं। जनार्दनकी ऐसी दया है।

८०–दीनको निज भावार्थमें परिपूर्ण और एकाकी देखकर वह उसपर दया करते हैं। दीनोंपर उनकी पूर्ण दया है।

८१–जिसका जो भाव होता है, जनार्दन उसे पूरा करते हैं। जो परम समाधान चाहता है, जनार्दन उसका देहाभिमान नष्ट करते हैं।

(अ० २५)

प्रसन्नता

८२–सद्गुरुकी पूर्ण कृपा होनेसे यह मँन ही मनको अपनी पहचान करा देता है। उससे अपने ही सुखसे सुखी होकर मन ही मनसे प्रसन्न होता है।

८३–मन मनसे जब प्रसन्न होता है, तब वृत्ति निरभिमान होती है। ऐसा समाधान साधक स्वयं मनसे साधें।

८४–यह मन अपने आपको जीतकर वह विजय साधकको देता है। तब सद्गुरुसे पूर्ण निजबोध प्राप्तकर मन आत्मामें एक होकर लीन होता है।

(अ० २२)

भगवत्कृपा

८५–मेरी चित्त-शुद्धि हो, ऐसी इच्छा उत्पन्न होनेके लिये भी भगवत्कृपा चाहिये। भगवत्कृपा हो तो साधनोंमें सिद्धि हो सकती है।

८६–साधनोंमें मुख्य साधन मेरी भक्ति है। भक्तिमें भी नाम-कीर्तन विशेष है। नामसे चित्त-शुद्धि होती है—साधकोंको स्वरूपस्थिति प्राप्त होती है।

८७—नाम-जैसा और कोई साधन नहीं है। नामसे भव-बन्धन कट जाते हैं।

८८—स्वरूपस्थितिमें मन निश्चल हो जाय तो फिर और क्या चाहिये? वहाँ अन्य साधन लज्जित होते हैं। उनका कोई प्रयोजन भी फिर नहीं रहता। (अ० २३)

मन

८९—मनने सबको बाँध रखा है, मन किसीसे नहीं बँधता। मनने देवताओंको पस्त कर डाला। वह इन्द्रियोंको क्या समझता है?

९०—मनकी मार बड़ी जबरदस्त है। मनके सामने कौन ठहर सकता है? यह देवताओंके लिये भी दुर्धर है, भयङ्करोंके लिये भी भयङ्कर है।

९१—पर हीरेसे हीरा काटा जाता है वैसे ही मनसे ही मन पकड़ा जाता है। पर यह भी तब होता है जब पूर्ण गुरु-कृपा होती है।

९२—मन गुरु-कृपाका दास है, सदा सद्गुरुसे डरता रहता है। गुरु-चरणोंके पास यह मन रहे तो वह साधकको सन्तोष दिलाता है।

९३—मन ही मनका द्योतक, मन ही मनका साधक, मन ही मनका बाधक और मन ही मनका घातक है।

भगवद्भजन

९४–स्वधर्माचरणसे जो कुछ मिलता है, तपाचरणसे जो कुछ मिलता है, साख्यज्ञान-विचारसे जो कुछ मिलता है, विषय-त्यागसे, अष्टागयोगसे अथवा वाताम्बु-पर्णाशन-भोगसे जो कुछ मिलता है, वेदाध्ययन, सत्य वचन तथा अन्य जो-जो साधन हैं उन साधनोंसे जो कुछ मिलता है वह सब भगवद्भजन्से प्राप्त होता है।

९५–मेरी निज भक्ति होनेसे दुस्साध्य साधनोंको साधे विना, दुर्गम गिरि-कन्दराओंको लाँघे विना ही सब साधनोंके फल भक्तके द्वारपर आ जाते हैं।

९६–वह भक्ति कैसी है यह यदि जानना चाहते हो तो ब्रह्मभावसे गुरुका भजन करो।

(अ० २०)

निरपेक्षता

९७–निरपेक्ष ही धीर होता है—धैर्य उसके चरण छूता है। जो अधीर है उसमें निरपेक्षता नहीं होती।

९८–कोटि-कोटि जन्मोंके अनुभवके वाद ऐसी निरपेक्षता आती है। निरपेक्षतासे वढकर और कोई साधन ही नहीं है।

९९–ऐसी निरपेक्षतासे ही भगवद्भजनमें प्रीति होती है। उससे वह भक्ति भक्तको प्राप्त होती है जिसे वेद एकान्त-भक्ति कहते हैं।

एकान्त-भक्ति

१००–एकान्त-भक्तिका लक्षण यह है कि भगवान् और भक्तका एकान्त होता है। भक्त भगवान्‌में मिल जाता है और भगवान् भक्तमें मिल जाते हैं।

१०१–जो विषय-भेद नहीं देखता, समत्वका जिसे बोध हो गया, वही शुद्ध साधु है। उसीको मद्भजनका परमानन्द प्राप्त होता है।

१०२–जो देखता है, सब प्राणियोंमें मैं ही एक परमात्मा हूँ, जिसे द्वैतकी भ्रान्ति नहीं होती, ऐसी जिसकी भजन-स्थिति होती है वही एकान्त-भक्त है और उसीकी भक्ति 'एकान्त-भक्ति' है।

१०३–जो सदा समभावमें एकाग्र रहते हैं, मेरे भजनमें ही तत्पर रहते हैं वे प्रकृतिके पार पहुँचकर मेरे स्वरूपको प्राप्त होते हैं।

(अ० २०)

त्रिगुण-संक्रम

१०४–पलमें धर्म और पलमें काम त्रिगुणके सक्रमसे होता है।

१०५–अभी स्वधर्म-कर्ममें श्रद्धा हुई तो दूसरे ही क्षणमें उससे विरक्ति होती है। फिर तीसरे क्षणमें भोगकी इच्छा होती है। अभी काममें रति हुई, क्षणमात्रमें निष्काम वृत्ति हो गयी

और फिर दूसरे ही क्षणमें ममता उत्पन्न हुई। यह त्रिगुण-सक्रम है।

१०६—त्रिगुणका त्रिविध धर्म है। काम भी त्रिविध है। अर्थ-स्वार्थ-निर्वाह त्रिगुणात्मक है।

१०७—इसमें कर्मका दोष नहीं है। दोष कर्ताकी बुद्धिमें है। जो जैसी कल्पना करता है वैसा ही फल भोगता है।

१०८—भूमि स्वभावसे ही शुद्ध है। उसमें जो बोया जायगा वही उपजेगा। वैसे ही स्वकर्म स्वयं शुद्ध है। फल-भोग गुण-वृत्तिसे होता है। वाणी स्वभावसे ही सरल है, राम-नामसे वह ब्रह्मसे पोषण-लाभ करती है और व्यर्थकी बकवादसे व्यर्थ ही क्षीण होती है और निन्दासे महापाप भोगती है। ब्रह्म तो निर्मल है, कर्म भी शोधक होनेसे अति शुद्ध है, इसमें जो कुछ बन्धन है वह गुण-क्षोभसे चित्तका सम्बन्ध है।

कर्म-ब्रह्म

१०९—कर्म-ब्रह्ममें दोष नहीं है, दोष चित्त-वृत्तिमें है, वही पुरुषको गुण-क्षोभसे नीचे ढकेलता है।

११०—वह अविद्या-बन्धन काटनेका उपाय भगवद्भजन है। यह जानकर संत सज्जन भक्तिपर अपने प्राण बेच देते हैं।

अनन्य प्रीतिका प्रभाव

१११—जिसके हृदयमें विषयसे विरक्ति हो, अभेदभावसे मेरी भक्ति हो, भजनमें अनन्य प्रीति हो उसका मैं श्रीपति आज्ञा-धारक हूँ।

(अ० २५)

दुःसङ्गका परिणाम

११२–शिश्नोदरभोगमें ही जो आसक्त हैं, स्वधर्मत्यागमें जो अधर्मरत हैं, ऐसे विषयासक्तोंको असाधु समझो। उनका सङ्ग मत करो। काया, वाचा, मनसा उनकी सङ्ग-सोहबत त्याग दो।

११३–दुर्जनोंकी सङ्गतिसे क्षणार्धमें पुरुष महान् अनर्थमें गिर सकता है। ऐसे लोगोंका जहाँ वास हो वहाँ कदापि न जाना चाहिये।

११४–अन्धेका हाथ अन्धा पकडे तो दोनो ही महागर्तमें जा गिरें, वैसे ही अविवेकी जनोंके सङ्गसे विषयान्ध अन्धतम नरकमें जा गिरते हैं।

(अ० २६)

दुर्जनके लक्षण

११५–जो वेद-शास्त्रार्थको नहीं मानता, परमार्थमें जिसका विश्वास नहीं होता, जो अति विकल्प करता है वह भी दुःसङ्ग है।

११६–जो वडा भारी विरक्त बनता है पर हृदयमें अधर्म-कामरत रहता है, कामवश द्वेष करता है वह भी निश्चित दुःसङ्ग है।

११७–जो स्वधर्म-कर्ममें वड़ी विनीतता दिखाता है, बडा सात्त्विक वनता है, पर हृदयमें संतोंके दोष देखता है वह अति दुष्ट दुःसङ्ग है।

११८—जो मुँहसे चाहे कुछ न कहे पर साधुओंके गुण-दोष देखता रहता है, बाहर उपलक्षणोंसे उन दोषोंको दिखलाता है वह अति कठिन दु:सङ्ग है।

भयङ्कर दु:सङ्ग

११९—पर सबसे मुख्य दु:सङ्ग अपना ही काम है—अपनी ही सकामता है। इसे समूल त्याग देनेसे ही दु:सङ्गता त्यागी जाती है।

संसार सुखरूप

१२०—काम-कल्पनाकी जो मार है वही बड़ा दुर्धर दु:सङ्ग है। उस काम-कल्पनाको जो नर त्यागता है उसके लिये संसार सुखरूप होता है।

सत्सङ्ग

१२१—उस काम-कल्पनाको त्यागनेका मुख्य साधन केवल सत्सङ्ग है। संतोंके श्रीचरणोंको वन्दन करनेसे काम मारा जाता है।

१२२—सत्सङ्गके बिना जो साधन है वह साधकोंको बाँधनेवाला कठिन बन्धन है। सत्सङ्गके बिना जो त्याग है वह केवल पाखण्ड है।

१२३—विषयोंके सम्बन्धसे चित्तमें बड़ी कठिन गाँठे पड़ गयी हैं। उन्हें विवेकसे छेदन करनेके लिये संत ही चाहिये।

(अ० २६)

१२४–संतोंकी मामूली बातें महान् उपदेश होती हैं, चित्तमे पड़ी हुई गाँठे उनके शब्दमात्रसे छिद जाती हैं।

१२५–इसलिये बुद्धिमानोंको चाहिये कि सत्सङ्ग करें। सत्सङ्गसे साधकोंके भव-पाश कट जाते हैं।

(अ० २९)

श्रेष्ठ धर्म

१२६–हृदयमें मेरा नित्य ध्यान हो, मुखसे मेरा नाम-कीर्तन हो, कानोंमें सदा मेरी ही कथा गूँजती हो, प्रेमानन्दसे मेरी ही पूजा हो। नेत्रोंमें मेरी ही मूर्ति विराज रही हो, चरणोंमें मेरे ही स्थानकी यात्रा हो, रसनामें मेरे ही तीर्थका रस हो, भोजन हो तो वह मेरा ही प्रसाद हो। साष्टाङ्ग नमन हो मेरे ही प्रति, आलिङ्गन हो आह्लादसे मेरे ही भक्तोंका और एक क्या आधा पल भी मेरी सेवा बिना व्यर्थ न जाय। सब धर्मोंमे यही श्रेष्ठ धर्म है।

(अ० ३०)



गीताप्रेस, गोरखपुरकी गीताएँ

श्रीमद्भगवद्गीता—[श्रीशाङ्करभाष्यका सरल हिन्दी-अनुवाद] इसमें मूल भाष्य तथा भाष्यके सामने ही अर्थ लिखकर पढ़ने और समझनेमें सुगमता कर दी गयी है । पृष्ठ ५१९, ३ चित्र, मूल्य साधारण जिल्द २॥), बढ़िया कपड़ेकी जिल्द ... २।।।)

श्रीमद्भगवद्गीता—मूल, पदच्छेद, अन्वय, साधारण भाषाटीका, टिप्पणी, प्रधान और सूक्ष्म विषय एवं त्यागसे भगवत्प्राप्तिसहित, मोटा टाइप, कपड़ेकी जिल्द, पृष्ठ ५७०, ४ चित्र, मूल्य १।)

श्रीमद्भगवद्गीता—मराठी टीका, हिन्दीकी १।) वाली नं० २ के समान, मू० १।)

श्रीमद्भगवद्गीता—प्रायः सभी विषय १।) वाली नं० २ के समान, विशेषता यह है कि श्लोकोंके सिरेपर भावार्थ छपा हुआ है, साइज और टाइप कुछ छोटे, पृष्ठ ४६८, मूल्य ॥≥) सजिल्द ।।।=)

श्रीमद्भगवद्गीता—बंगला टीका, गीता नं० ४ की तरह, मूल्य .. ।।।)

श्रीमद्भगवद्गीता गुटका—(पाकेट साइज) हमारी १।) वाली गीताकी ठीक नकल, साइज २२×२९–३२ पेजी, पृष्ठ-संख्या ५८८, सजिल्द मू० ।।)

श्रीमद्भगवद्गीता—श्लोक, साधारण भाषाटीका, टिप्पणी, प्रधान विषय, साइज मझोला, मोटा टाइप, गीता नं० १२ की तरह, पृष्ठ ३१६, मूल्य ।।), सजिल्द ... ॥≡)

श्रीमद्भगवद्गीता—मूल, मोटे अक्षरवाली, सचित्र, मूल्य ।–) सजिल्द ।≡)

श्रीमद्भगवद्गीता—केवल भाषा, अक्षर मोटे हैं, १ चित्र, मूल्य ।) सजिल्द ।=)

श्रीमद्भगवद्गीता भाषा—प्रत्येक अध्यायके माहात्म्यसहित (गुटका) २२×२९–३२ पेजी साइज, पृष्ठ ४००, मूल्य ।) सजिल्द ।–)

पञ्चरत्न गीता—मूल, सचित्र, मोटे टाइप, पृष्ठ ३२८, मूल्य सजिल्द ।)

श्रीमद्भगवद्गीता—साधारण भाषाटीका, पाकेट साइज, सभी विषय ॥) वाली गीता नं० ७ के समान, सचित्र, पृष्ठ ३५२, मू० =)॥ स० ≡)॥

गीता—मूल ताबीजी, साइज २×२॥ इञ्च, मूल्य सजिल्द ... =)

गीता—मूल, विष्णुसहस्रनामसहित, सचित्र-सजिल्द ... ... –)॥

श्रीमद्भगवद्गीता—७॥×१० इञ्च साइजके दो पन्नोंमें सम्पूर्ण, मूल्य –)

भक्तोंके जीवन-चरित्र

भागवतरत्न प्रह्लाद–३ रंगीन, ५ सादे चित्रोंसहित, पृष्ठ ३४०, मोटे अक्षर, सुन्दर छपाई, मूल्य १) सजिल्द ... १।)

देवर्षि नारद–लोक-प्रसिद्ध नारदजीकी विस्तृत जीवनी, २ रंगीन, ३ सादे चित्रोंसहित, पृष्ठ २४०, सुन्दर छपाई, मूल्य ।।।) सजिल्द १)

श्रीतुकाराम-चरित्र–९ चित्र, पृष्ठ ६९४, मूल्य १≢) सजिल्द १।।)

श्रीज्ञानेश्वर-चरित्र और ग्रन्थ-विवेचन–दक्षिण भारतके प्रसिद्ध भक्त ('श्रीज्ञानेश्वरी गीताके कर्ता') की जीवनदायिनी जीवनी और उनके उपदेशोंका नमूना सचित्र, पृ० ३५६, मू० ।।।-)

श्रीएकनाथ-चरित्र–ले०–हरिभक्तिपरायण प० श्रीलक्ष्मण रामचन्द्र पागारकर, भाषान्तरकार–प० श्रीलक्ष्मण नारायण गर्दे, पृ० २४०, ।।)

श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली (खण्ड १)–सचित्र, ले०-श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारी, श्रीचैतन्यदेवकी विस्तृत जीवनी, ६ चित्र, पृष्ठ २९२, मू० ।।।=), १=)

श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली (खण्ड २)–सचित्र, पहले खण्डके आगेकी लीलाएँ, पृष्ठ ४५०, ९ चित्र, मूल्य १=) सजिल्द ... १।=)

श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली–(खण्ड३)–पृष्ठ३८४,११चित्र, मू० १) स० १।)

श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली–(खण्ड४)–पृष्ठ २२४,१४चित्र,मू०।।=)स०।।।=)

श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली–(खण्ड ५)–पृष्ठ २८०, १० चित्र, मूल्य ।।।) सजिल्द ... ... १)

श्रीरामकृष्ण परमहंस–इसमें परमहंसजीकी जीवनी और ज्ञानभरे उपदेशोंका संग्रह है, ५ चित्र, पृष्ठ २५०, मूल्य ... ।≢)

भक्त-भारती–ध्रुव, प्रह्लाद, गजेन्द्र, शबरी, अम्बरीष, अजामिल और कुन्ती इन ७ भक्तोंकी कवितामें सरल कथाएँ, ७ चित्र, मू० ।≢)

भक्त नरसिंह मेहता–सचित्र, पृष्ठ १८०, ... ।=)

मूल गोसाईं-चरित–श्रीवेणीमाधवदासविरचित, कवितामें गोस्वामी तुलसीदासजीका जीवन-चरित्र, सचित्र, पृष्ठ ३६, मूल्य -)।

एक संतका अनुभव–पृष्ठ २८, मूल्य ... .. -)

The Story of Mira Bai—By Syt Bankey Behari, B Sc., LL B, (Illustrated) p 150, As -/13/-

पता–गीताप्रेस, गोरखपुर